जैन भारती

अगस्त 2013 • वर्ष 61 • अंक 8 • वार्षिक रु. 200.00

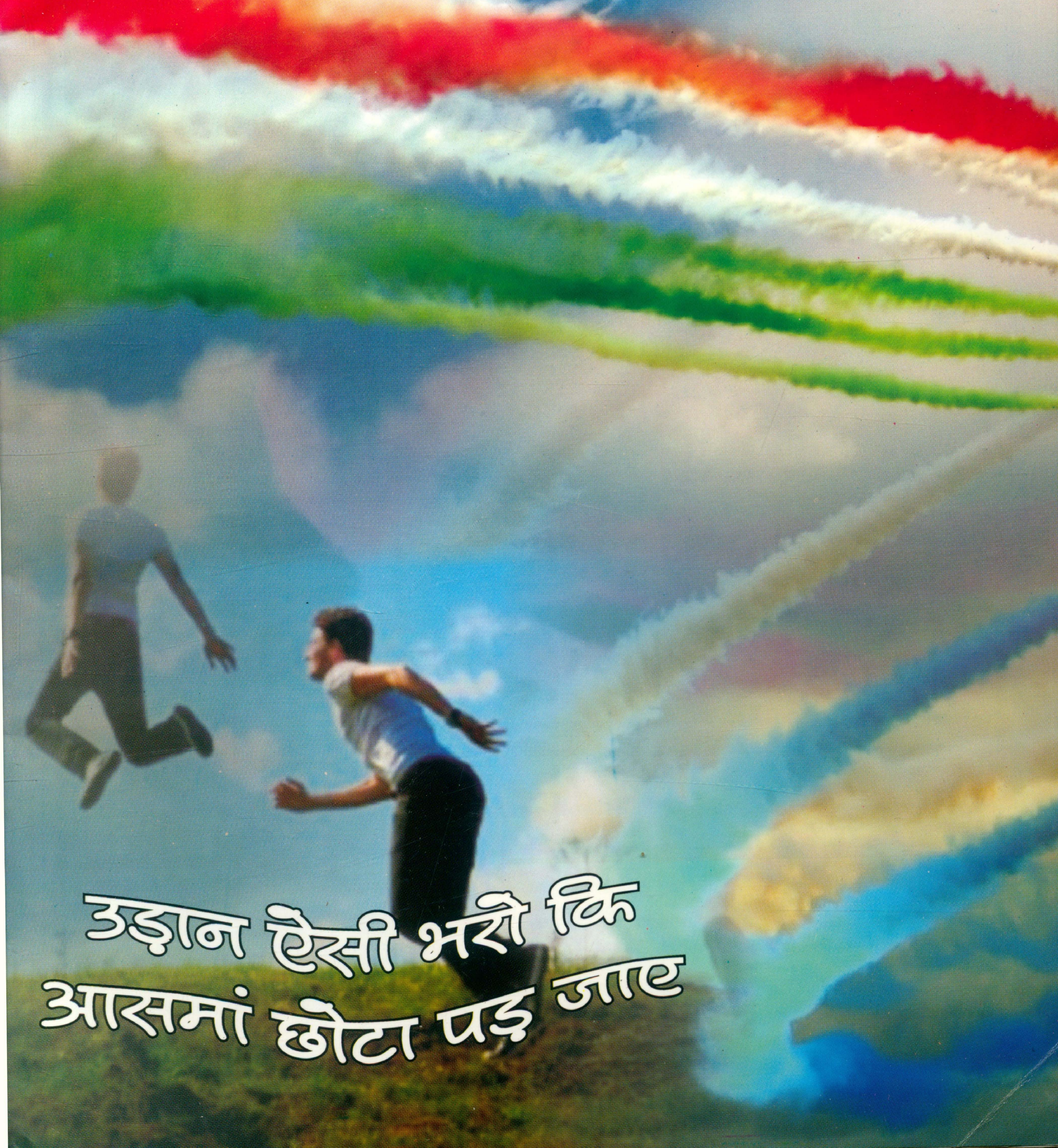

With best compliments from :

SMT MACHINES

INFRASTRUCTURE

- In-House third party inspection facility.
- SMT has three manufacturing units.
- SMT has more than 150 Heavy and Precise machine out of which about 60 machines are imported from Europe, efforts to deliver the best and on time.
- All the designing is done on 3D Autodesk Inventor software's by our experienced engineers
- SMT has taken initiative to provide Operating and Instruction Manual with most of the machines integrated by Oracles ERP Software, dedicating ourselves to professionalism committed for the Best of the After Sale Services and lot more.

Turnkey Project Experts in Total Steel Making

Apart from regular products, we provides-Certified TMT Quenching Box, Automatic and Skid Type transfer cooling Beds, Twin Channels, Eden Borne Type Coiler, Flying & Dividing Shears, Cobble Shears, Section Straightening Machine, Repeaters Roller Conyeyors, Tilting & Y Table, Snap Shears etc.

SMT

SMT MACHINES (INDIA) LIMITED

An ISO 9001:2000 Co., An ISO 14001 : 2004 Co., An ISO 18001: 2007 Co.
D & B Ranked SE 2A Unit, Govt of India Recognized Export House
G.T.Road Near Industrial Focal Point, Mandi Gobindgarh - 147301,
INDIA, Mob : + 91-93577 55555
Tel : + 91- 1765 256337, 257742, Fax : 255199
e- mail : info@smtmachinesindia.org, info@smtsteelmills.com
Web : www.smtmachinesindia.org. www.smtsteelmills.com

Fine Strokes (09866291098)

जैन भारती

वर्ष 61 • अगस्त, 2013 • अंक 8

अनुक्रम

1.	संपादकीय		5
2.	आत्मा के आस-पास	–आचार्य तुलसी	7
3.	आदिम युग : पहला कालखंड	–आचार्य महाप्रज्ञ	11
4.	ऋजुता से क्या मिलेगा?	–आचार्य महाश्रमण	15
5.	आजादी की स्वर्ण जयंती	–आचार्य तुलसी	17
6.	स्वतंत्रता का मूल्य	–	20
7.	सवेरा अभी तक हुआ नहीं	–साध्वी शुभप्रभा	21
8.	कविताएं	–	24
9.	कितना विचित्र है स्वार्थ का तंत्र	–मुनि जयंत कुमार	25
10.	स्वतंत्रता वरदान बने, अभिशाप नहीं	–मुनि चैतन्य कुमार	27
11.	स्वतंत्रता दिवस मनाएं नए संकल्प के साथ	–प्रोफेसर आनंदप्रकाश त्रिपाठी	29
12.	घड़ी का चेन	–मुनि वत्सराज	31
13.	भीतर की ओर	–आचार्य महाप्रज्ञ	32
14.	राज्य-राष्ट्र की दंडनीति और अहिंसा	–डॉ. लक्ष्मीनारायण मित्तल	33
15.	विभाजन किसका करें	–श्याम श्रोत्रिय	35
16.	कार्यकर्ता के पांच गुण	–मुनि मोहनलालजी (शार्दूल)	37
17.	मन को कैसे मोड़ा जाए?	–मंत्री मुनि सुमेरमलजी (लाडनूं)	39
18.	हम तो कबहुं न निज घर आए		41
19.	समय के साथ, समय से आगे	–आशारानी व्होरा	43
20.	अंधी आंखें उजले आंसू	–निशांत केतु	46
21.	अवधूत के चौबीस गुरु		50
22.	तेरापंथ शासन का कार्यकारी हस्ताक्षर महासभा		55

• *सम्पादक*
डॉ. शान्ता जैन

• *आवरण*
गौरीशंकर

संपादकीय सम्पर्क सूत्र : डॉ. शान्ता जैन, जैन विश्व भारती विश्वविद्यालय, लाडनूं, 341306, मो. 09413889617

प्रकाशकीय कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401

प्रधान कार्यालय : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता 700001

सदस्यता शुल्क : वार्षिक 200/- • त्रैवार्षिक 500/- • दसवर्षीय 1500/- रुपए

प्रेरणा पाथेय

- काम को जीतना महाकठिन कार्य तो हो सकता है, पर असंभव नहीं। लक्ष्य बनाओ। काम के साथ युद्ध शुरू करो। कभी अकाम बन जाओगे।
- किसी को धोखा देना पाप है तो किसी से धोखा खाना मूर्खता है। न किसी से धोखा खाओ और न किसी को धोखा दो।
- यदि अप्रमत्तता के साथ समय का सदुपयोग किया जाए तो ऐसी मंजिल नहीं, जहां तक पहुंचा न जा सके।
- परिश्रम सही दिशा में हो, सफल हो। इसके लिए किसी कार्य को करने से पूर्व मन में दो प्रश्न उठने चाहिए—'क्यों' और 'कैसे'?
- समझदार व्यक्ति केवल भाग्य के भरोसे ही नहीं रहता और न ही केवल पुरुषार्थ को महत्त्व देता है। वह भाग्य और पुरुषार्थ दोनों को मानता है।
- बीस जगह छोटे-छोटे गड्ढे खोदने की अपेक्षा कहीं एक गहरा गड्ढा खोदो, वह कुआं होगा। तुम्हारी प्यास बुझाने वाला जल तुम्हें प्रदान कर सकेगा।
- हर व्यक्ति के जीवन में अच्छाइयां और कमियां दोनों होती हैं। यदि कमियों को दूर करने और अच्छाइयों को विकसित करने का प्रयास होता है तो जीवन अच्छा बन जाता है।
- दूसरों को उपदेश देने से पूर्व यह भी आत्मालोचन करो कि उपदेश का कितना अंश तुम्हारे जीवन में है।
- छोटा मान कर किसी की उपेक्षा मत करो। हाथी की सूंड में प्रविष्ट एक छोटा गिरगिट भी बड़ी समस्या का कारण बन सकता है।
- आवेश की स्थिति में निर्णय गलत होने की संभावना रहती है, अतः शांत अवस्था में ही चिंतनपूर्वक निर्णय करना चाहिए।

आचार्य महाश्रमण

उड़ान ऐसी भरें कि आसमां छोटा पड़ जाए

देश आजाद हुआ अंग्रेजों की गुलामी से 1947 में। सोचा था—हम आजाद देश के आजाद नागरिक होंगे। हम पर न किसी का अंकुश होगा, न प्रतिबंध। खुला आसमां, खुली उड़ान भरते हुए हम नए भारत का सृजन करेंगे। मगर 66 वर्षों के बाद भी आज हम सही मायने में स्वतंत्र कहां हैं? देश के नेतृत्व का चरित्र इतना सौंदर्यभरा नहीं है कि हम उसमें सत्य और शिवत्व देख सकें। जहां भी देखें नकारात्मक विचारों की भीड़ खड़ी मिलेगी। हर नागरिक स्वयं को बेबस, मजबूर और मानसिक त्रासदी से घिरा हुआ महसूस कर रहा है। पैसे और सत्ता ने आम आदमी को जीवन-मूल्यों के विकास के प्रति नास्तिक बना दिया है।

यद्यपि आज हमने शिक्षा और विज्ञान के क्षेत्र में शिखर छूनेवाले विकास के मानक बनाए हैं मगर जब हम स्वयं अपने संदर्भ में सोचते हैं, तो हमारी उम्मीदें बौनी पड़ती-सी दीखती हैं। एक ज्वलंत सवाल सबके दिमाग में उठता है कि ऐसी स्वतंत्रता किस काम की, जहां जीवन भी सुरक्षित न हो? घर से निकला व्यक्ति रात को घर पहुंचने पर ही चैन की सांस लेता हो, क्योंकि पता नहीं कब, कौन उसे मार दे, अपहरण कर ले, उसे लूट ले, या फिर कोई अनहोनी घटना घट जाए। न कन्याएं सुरक्षित हैं और न महिलाएं। न घर में सुरक्षित हैं और न सड़क पर, न दिन में और न रात में। अपने ही अपनों के दुश्मन बन रहे हैं तो फिर परायों की तो बात ही क्या? बाड़ ही खेत को खा रही है।

आज चारों ओर अनैतिक तत्त्व बढ़ रहे हैं। कहीं शोषण, अत्याचार, आतंक, हत्या, अपहरण जैसे हिंसा के काले कारनामे, तो कहीं प्राकृतिक आपदाएं—कभी बाढ़ तो कभी भूकम्प, कभी तूफान तो कभी भीषण सर्दी-गर्मी का प्रकोप। आदमी कहां सुख तलाशे?

सुख के लिए भी तो चाहिए शिक्षा, चिकित्सा, भरपेट रोटी, पहनने के लिए पर्याप्त कपड़े और रहने के लिए सिर पर छत। देश की गरीबी और अमीरी की बढ़ती दीवारों ने देश में बुराइयों को, अनैतिक मन को जन्म दे दिया है। आज सबकी सोच 'स्व' पर टिक गई। औरों का दुःख किसी को छूता तक नहीं। विकास में प्रतियोगिता होती है अपनी क्षमताओं को आजमाने की मगर आज प्रतियोगिता में प्रक्रिया ही दूषित हो गई, इसलिए औरों को पछाड़कर आगे बढ़ने का शौक जागता जा रहा है।

देश में उजालों की सड़कें तो बनी हैं मगर आदमी अंधेरों में डूबा है। विदेशी संस्कृतियों को अपनाकर उदारता और वसुधैव कुटुम्बकम् का अभद्र स्वरूप तो परोसा जा रहा है, पर उसने हमारी संस्कृति के ऐतिहसिक और गौरवशाली मूल्यों को खंडहर बना दिया है।

देश में बढ़ती हुई विलासिता और उपभोगवादी संस्कृति ने संयम की सभी सीमाएं तोड़ दी हैं। कानून है, पर व्यवस्था नहीं। न्याय है पर शोषण और अत्याचारों का अंत नहीं, बौद्धिक विकास की क्षमताएं हैं मगर उन्हें आजमाने की सही जमीं, सही दिशा नहीं। राजनीति है, पर फैलते भ्रष्टाचार ने ईमानदारी की कमर तोड़ दी। महामारी, महंगाई और बीमारी ने भीतर तक हिला दिया। पर्यावरण प्रदूषण की बढ़ती सीमाओं ने इन्सान को पानी, धूप, हवा के लिए, बेजुबान और बेईमान बना दिया है।

अनैतिकता, भ्रष्टाचार, गबन, घोटाले जैसे शब्द तो मानो नेताओं की अहमियत की पहचान बन गए हैं। हृदय तार-तार तो तब होता है जब तथाकथित धर्मगुरु भी धर्म का लबादा ओढ़े अपने काले कारनामे से भोली-भाली जनता को मूर्ख बनाते हैं और धर्म जैसे परम पवित्र तत्त्व को अपने कुत्सित आचरण और अनैतिक व्यवहार से कलंकित करने में जरा भी शर्म महसूस नहीं करते।

लेकिन आज भी हमारे देश में ऐसे राजनेताओं, सामाजिक कार्यकर्ताओं और धर्मगुरुओं की कमी नहीं है जो वास्तव में भगवान महावीर और भगवान बुद्ध की अहिंसा, मैत्री, अनुकंपा की संस्कृति का न केवल अपने अन्तःकरण से पालन करते हैं बल्कि जनता की भलाई के लिए, देश में सर्वांगीण विकास के लिए अपने आपको सर्वात्मना समर्पित किए हुए हैं। इस संदर्भ में आचार्यश्री तुलसी ने भी भारतवासियों को प्रेरणा दी थी—'असली आजादी अपनाओ।' यदि देश के सभी लोग एकजुट होकर अन्याय और अत्याचार का पुरजोर प्रतिरोध करेंगे तभी आजादी का असली स्वाद भारत का प्रत्येक नागरिक चख पाएगा और सचमुच! उस समय ऊंची उड़ान के लिए आसमान भी छोटा पड़ जाएगा।

आइए, विकास की उड़ान भरने के लिए फिर से एक बार समर में उतरें। यह मानकर कि यह लड़ाई इस बार अंग्रेजों की सैनिक शक्ति के साथ नहीं होगी। यह लड़ाई अपने साथ होगी, जीवन-मूल्यों के साथ होगी। इस लड़ाई में हमें शस्त्र नहीं, संकल्प चाहिए। आत्मविश्वास चाहिए, लक्ष्य के प्रति निष्ठा भाव चाहिए।

— मुमुक्षु शांता

आत्मा के आस-पास

आचार्य तुलसी

गतांक से आगे...(3)

महान्‌सृजन-शिल्पी अध्यात्म प्रचेता आचार्य श्री तुलसी का एक विशिष्ट रचना ग्रंथ है आत्मा के आस-पास, जिसमें अर्हत् वाणी, अध्यात्म पदावली और प्रेक्षा संगान-रचनाएं एक साथ संयोजित हैं।

आचार्यश्री ने यह रचना योगक्षेम-वर्ष में बनाई थी। इसका प्रतिपाद्य-विषय है कि व्यक्ति निश्चय और व्यवहार की समन्विति में जीना सीखे। शरीर को परिधि में और आत्मा को केंद्र में रखे। स्व-पर का भेद जानकर संस्कारों का परिष्कार करे। कर्म मीमांसा को समझें, पापभीरू बनें, अपने प्रति जागरूक रहें। हर वक्त आत्मा के आस-पास रहें।

जैन-भारती के सुधी पाठकों के लिए आचार्यश्री तुलसी के जन्म शताब्दी वर्ष को लक्ष्य में रखकर आध्यात्मिक जीवन-विकास हेतु अध्यात्म पदावली मई अंक से क्रमशः शुरू की गई है। विश्वास है सुधी पाठक इसका लाभ उठाएंगे।

लेश्या

30. **तैजस-संयुत चेतना, लेश्या विविध स्वभाव।**
उसके स्पंदन चक्र से जुड़ा हुआ है भाव।।

तैजस शरीर के साथ काम करनेवाली चेतना का नाम लेश्या है। लेश्या के मुख्यतः दो प्रकार हैं—शुभ और अशुभ। इन दोनों लेश्याओं के अनेक रूप बनते हैं। भावों का निर्माण लेश्या के स्पंदन चक्र से होता है। चेतना के स्तर पर जिस लेश्या की सक्रियता होती है, वैसे ही भाव बन जाते हैं।

विधायक–निषेधात्मक भाव

31. **विविधमुख भाव प्रवाह का, फल अध्यात्म-प्रसाद।**
धार निषेधक भाव की, लाती है अवसाद।।

32. **स्पन्दन हिंसा आदि का, भाव निषेधक दृष्ट।**
सत्य अहिंसा आदि का, भाव विधायक इष्ट।।

भाव दो प्रकार के होते हैं—विधायक और निषेधात्मक। हिंसा, असत्य आदि अठारह पाप निषेधात्मक भाव हैं। अहिंसा, सत्य, करुणा आदि विधायक हैं। विधायक भावों से आत्मा प्रसन्न रहती है। निषेधात्मक भाव अवसाद का कारण बनते हैं। भगवान महावीर ने कहा है—समयं तत्थुवेहाए अप्पाणं विप्पसायए—पुरुष अपने जीवन में समता का आचरण कर आत्मा को प्रसन्न करे। महर्षि पतञ्जलि का अभिमत है—निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसाद—निर्विचारता का अर्थ है निर्विकल्पता। विकल्पशून्यता से जो निर्मलता प्राप्त होती है, वह आत्मा की प्रसन्नता का हेतु है। समता और निर्विचारता की बात विधायक भावों से ही घटित हो पाती है।

33. **भाव औदयिक मोह का, है निषेध प्रतिरूप।**
क्षय-क्षयोपशम-जन्य वह, बने विधायक रूप।।

मोह कर्म का औदयिक भाव निषेधात्मक भाव है। मोह कर्म का क्षायिक और क्षायोपशमिक भाव विधायक भाव है। मनुष्य जो भी प्रवृत्ति करता है उसे शुभ और अशुभ बनाने में मोह कर्म निमित्त बनता है। मोह कर्म के योग से प्रवृत्ति अशुभ बनती है। उसके क्षय-क्षयोपशम से वह शुभ बनती है। निषेधात्मक भावों का सर्जक भी मोह कर्म है।

चित्त तंत्र

34. **औदारिकयुत चेतना, चित्त तंत्र विख्यात।**
उससे संचालित सदा, सकल क्रिया-संघात।।

औदारिक के साथ जुड़नेवाली चेतना चित्त तंत्र कहलाती है। मनुष्य के सारे क्रियाकलाप इसी तंत्र के द्वारा संचालित होते हैं। अकेला औदारिक शरीर कोई क्रिया नहीं कर सकता और अकेली चेतना भी क्रिया करने में अक्षम है।

मन तंत्र

35. **चित्त चेतना योग से, है प्रवृत्त मन तंत्र।**
स्मृति चिंतन परिकल्पना, मन के कार्य स्वतंत्र।।

चित्त और चेतना के योग से मानस तंत्र की प्रवृत्ति होती है। स्मृति, कल्पना, चिंतन आदि मन के स्वतंत्र कार्य हैं। मन को सचेतन बनानेवाला तत्त्व चित्त है। इस बात को यों भी कहा जा सकता है कि चित्त की चेतना पाकर मन का तंत्र प्रदीप्त होता है। वह प्रकाशमय मन ही भाव मन है।

36. **मन की चंचलता बढ़े, बढ़ता दुख का वेग।**
हो मन की एकाग्रता, घट जाता आवेग।।

मन के दो रूप हैं—चंचल और स्थिर। मन की चंचलता बढ़ती है तो उससे दुःख का वेग बढ़ता है। मन एकाग्र होता है तो उससे दुःख का आवेग घटता है। चंचलता और स्थिरता के परिणाम से परिचित व्यक्ति मन को एकाग्र बनाने की साधना करता है।

37. **बन जाता पंकिल सलिल, पा मालिन्य प्रयोग।**
हो जाता है बर्फ जब, रहता अमल अरोग।।

पानी अपने आप में निर्मल होता है, पर मिट्टी आदि के मिश्रण से कीचड़दार बन जाता है, क्योंकि वह तरल होता है। उसमें गंदगी डालने पर वह उसी में घुल जाती है, पर पानी जब बर्फ के रूप में जम जाता है तो गंदगी फिसलकर बह जाती है। उस स्थिति में उसकी निर्मलता और स्वस्थता सुरक्षित रह जाती है।

38. **जब-जब बनता मन अमन, होती चित्त समाधि।**
नाम शेष होती स्वयं, आधि व्याधि उपाधि।।

मन की तीन अवस्थाएं हैं—दुर्मन, सुमन और अमन। मन तभी होता है जब उसे पैदा किया जाता है। मन से परे की अवस्था अभावात्मक है। उसे अमन कहा जा सकता है। अमन के तीन रूप हैं—

- नो तम्मणे—लक्ष्य में नहीं लगा हुआ मन।
- नो अतम्मणे—लक्ष्य से अन्यत्र नहीं लगा हुआ मन।
- अमणे—मन की अप्रवृत्ति।

मन जब अमन बनता है तो चित्त में समाधि उतर आती है। समाधि का अवतरण होते ही आधि—मानसिक बीमारी, व्याधि—शारीरिक बीमारी और उपाधि—भावात्मक बीमारी समाप्त हो जाती है।

39. **खेल रहा इस जगत में, मानव मन के खेल।**
चालू है यह काफिला, जैसे बिना नकेल।।

इस संसार में मनुष्य जितने खेल खेलता है, वे सब मन के खेल हैं। बिना नियंत्रण चलनेवाले सार्थ की तरह मन के खेल चलते रहते हैं।

एक विदेशी व्यक्ति हुए हैं, जो दादा के नाम से प्रसिद्ध थे। वे इस बात पर अधिक बल देते थे कि मनुष्य जो कुछ सोचता है, करता है, वह सब मन के खेल हैं। मन से परे जाने पर जो घटित होता है, वह अध्यात्म है।

40. **कलह कदाग्रह कुटिलता, ईर्ष्या द्वेष विषाद।**
तब तक जब तक सुप्त हो, आत्मा का आह्लाद।।

कलह, दुराग्रह-कुटिलता और ईर्ष्या-द्वेष, विषाद आदि तत्त्व तब तक सक्रिय रहते हैं, जब तक आत्मा का आह्लाद नहीं जागता। आत्मा का आह्लाद जगाने के लिए आत्मरमण जरूरी है। आत्मरत व्यक्ति कभी कलह आदि कर ही नहीं सकता।

41. **आत्मा सोती, जागते इन्द्रिय-विषय विकार।**
आत्मा जब-जब जागती, सुप्त विषय-संस्कार।

आत्मा जब सो जाती है तो इन्द्रियविषयजनित विकार उभर आते हैं। जिस समय आत्मा जागृत रहती है, विषय संस्कार सो जाते हैं।

42. **औदारिक की चेतना में होते हैं व्यक्त।**
भाव अशुभ शुभ ये सभी, कारण हैं अव्यक्त।।

43. **कार्मण तन की चेतना, है इन सब का मूल।**
धूलिकणों की ऊर्ध्वगति, कारण है वातूल।।

मनुष्य के शुभ-अशुभ भाव औदारिक शरीर की चेतना में व्यक्त होते हैं। इनके अनुप्रेरक तत्त्व अव्यक्त रहते हैं। जैन दर्शन के अनुसार इनकी उत्पत्ति का हेतु कार्मणशरीर है। सूक्ष्म होने के कारण वह दिखाई नहीं देता। चक्रवात आता है तो धूलिकण ऊपर उठ जाते हैं। इसी प्रकार कार्मण शरीर के योग से भावों का उद्भव होता है।

भावों की शुभता और अशुभता में निमित्त बनते हैं क्षायोपशमिक और औदयिक स्पंदन। क्षायोपशमिक स्पंदन भावों को शुभ बनाते हैं और औदयिक स्पंदन अशुभ बनाते हैं। भावों के आधार पर योग भी शुभ और अशुभ बन जाता है। इस स्थिति में भाव और योग की संवादिता स्पष्ट हो जाती है।

आश्रव और संवर

44. द्वार खुला है, पवन भी आ सकती है धूल।
युगल-कषाय प्रवृत्ति का, यही बंध का मूल।।

द्वार खुला रहता है तो मकान में हवा का प्रवेश होता है। हवा भीतर आती है तो उसके साथ धूल भी आ सकती है। मनुष्य प्रवृत्ति करता है, उसके पीछे दो कषाय—राग और द्वेष काम करते हैं। राग-द्वेष की उपस्थिति में कर्मबंधन की अनिवार्यता है।

45. द्वार बंद है सघनतम, रज का नहीं प्रवेश।
संवर का सिद्धांत यह, शांत सकल आवेश।।

मकान के दरवाजों को सघनता से बंद कर लिया जाए तो भीतर रजकणों का प्रवेश नहीं होता। यह संवर का सिद्धांत है। आश्रव-प्रवृत्ति के निरोध का नाम संवर है। संवर की साधना कर्म निरोध की साधना है। कर्म का बंधन अविरति और प्रवृत्ति सापेक्ष है। इनके उपरत होने पर सब प्रकार के आवेश सहज रूप में शांत हो जाते हैं।

46. आश्रव भव का हेतु है, संवर मोक्ष-निदान।
आर्हत मत की दृष्टि यह, यही धर्म-विज्ञान।।

आश्रव संसार में परिभ्रमण का हेतु है और संवर मोक्ष का हेतु है। यह आर्हत् मत-जिनशासन की दृष्टि है और यही धर्म का विज्ञान है। इस सिद्धांत की पुष्टि निम्ननिर्दिष्ट पद्य से होती है—

आश्रवो भवहेतुः स्यात्, संवरो मोक्षकारणम्।
इतीयमार्हती दृष्टिरन्यदस्याः प्रपञ्चनम्।।

47. संवर शुद्ध स्वरूप को, पाने का सोपान।
सहयोगी है निर्जरा, तपःपूत प्रणिधान।।

संवर आत्म के शुद्ध स्वरूप को पाने का सोपान है। जब तक इस सोपान पर आरोहण नहीं होता, स्वरूपोपलब्धि असंभव है। निर्जरा स्वरूप की प्राप्ति में सहायक तत्त्व है। तपःपूत चैतसिक निर्मलता का नाम निर्जरा है। संवर और निर्जरा—दोनों के योग से ऊर्ध्वारोहण होता है।

क्रमशः....

मूर्च्छा की प्रबलता

मालिक ने नौकर से कहा—'यह लिफाफा ले जाओ, टिकट लगाकर पोस्ट ऑफिस में पोस्ट कर दो।'

नौकर ने वापस आकर मालिक से कहा—'यह लो टिकट।'

मालिक ने पूछा—'यह टिकट क्यों लाए? क्या लिफाफा पोस्ट नहीं किया।'

'जब मैं लिफाफा पोस्ट कर रहा था तब पोस्टमास्टर की नजर दूसरी तरफ थी, इसलिए मैंने टिकट नहीं लगाई। बिना टिकट लगा लिफाफा पोस्ट कर टिकट को बचा लिया।'

आदमी दूसरों को धोखा देना चाहता है, पर वह यह नहीं सोचता कि वह स्वयं धोखा खा रहा है।' वस्तुतः आदमी स्वयं को ही धोखा देता है दूसरों को नहीं। मूर्च्छा की प्रबलता के कारण आदमी समझता हुआ भी नहीं समझ रहा है।

आदिम युग : पहला कालखंड

आचार्य महाप्रज्ञ

'ऋषभायण' महाकाव्य आचार्य महाप्रज्ञ की ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों की योगक्षेम देनेवाली एक महत्वपूर्ण कृति है। इसमें भगवान ऋषभ का आदि, मध्य एवं अंतिम जीवन सिमटा हुआ है। आचार्यश्री ने इसमें मानव जाति के बाहरी और भीतरी विकास की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है। यह महाकाव्य समाज संरचना, समाज विकास और समाज प्रबंधन का जीवंत भाष्य है। शासन गौरव मुनिश्री धन्नजय जी द्वारा संपादित आचार्यश्री महाप्रज्ञ द्वारा प्रदत्त प्रवचनों को **जैन भारती** के सुधि पाठकों के लिए अगस्त अंक से क्रमशः लेखमाला के रूप में दिए जा रहे हैं।

—संपादक

भगवान ऋषभ का जीवन सर्वांगीण जीवन है। भारतीय दर्शन में जीवन की सर्वांगीणता के लिए चार पुरुषार्थ बतलाये गए हैं—काम, अर्थ, धर्म और मोक्ष।

भगवान महावीर का जीवन जितना धर्म और मोक्ष का जीवन है उतना काम और अर्थ का जीवन नहीं है। न उन्होंने कोई समाज की व्यवस्था दी, न राज्य का संचालन किया और न कोई अर्थनीति का सूत्रपात किया। उत्तर-खण्ड में तो उनका जीवन असाधारण है किंतु पूर्व-खण्ड में उनका जीवन एक सामान्य जीवन है।

भगवान ऋषभ का जीवन अथ से लेकर इति तक असाधारण रहा है। समाज व्यवस्था से उसका अथ हुआ और निर्वाण के साथ इति हुई। समाज की व्यवस्था करना, नगर बसाना, शिल्प का विकास, कला का विकास, कर्म का विकास, कृषि का विकास, लिपि का विकास, व्यापार की व्यवस्था—समाज के लिए ये जितनी अपेक्षाएं थीं उनकी पूर्ति के लिए भगवान ऋषभ ने काम किया और एक समय आया—इन सबसे संन्यास लिया, आत्मा की खोज में लगे, आत्मा का आविष्कार किया। आत्मा के पहले आविष्कारकर्ता हैं भगवान ऋषभ। आत्मा की साधना की और परम आत्मा को उपलब्ध हो गये।

यह एक सर्वांगीण जीवन है, इसीलिए भगवान ऋषभ का जीवन समाज के सामने बहुत विपुल संवेदना और चेतना के साथ प्रस्तुत होना चाहिए। उस जीवन के आधार पर एक काव्य लिखा गया—ऋषभायण। आचार्य हेमचन्द्र ने त्रिषष्टि-शलाकापुरुष चरित्र लिखा। एक प्राचीन ग्रन्थ है चौवन्नपुरुस-चरियम्। जिनसेन का महापुराण, आदिपुराण—इन सबमें भगवान ऋषभ के जीवन पर बहुत विस्तार से प्रकाश डाला गया है। जैसे राम का जीवन एक सर्वांगीण जीवन का दर्शन देता है वैसे ही ऋषभ का जीवन सर्वांगीण जीवन का दर्शन देता है।

हम भगवान ऋषभ तक पहुंचने का प्रयत्न करें तो उससे आगे भी जाना होगा।

सबसे पहला प्रश्न है कि यह विश्व क्या है? विश्व को समझे बिना ऋषभ को नहीं समझा जा सकता और ऋषभ को समझे बिना विश्व को नहीं समझा जा सकता।

दूसरा प्रश्न है—क्या इस विश्व को किसी ने बनाया है या यह बना बनाया है? दो ही विकल्प हो सकते हैं—या तो किसी ने बनाया है या बना बनाया है। वस्तु जगत के लिए भी ये दो विकल्प हो सकते हैं—अनादि-अनंत, सादि-सांत। विश्व के लिए भी ये दो ही विकल्प हैं।

जैन दर्शन का अभिमत है—यह विश्व अनादि-अनंत है। लोक या जगत का कोई कर्ता नहीं है।

चेतन और अचेतन—ये दो मूल तत्त्व हैं। जितने तत्त्व, द्रव्य या पदार्थ थे, उतने ही हैं, उतने ही रहेंगे। एक भी अणु या परमाणु न तो कम होगा और न ज्यादा होगा।

पांच अस्तिकाय बतलाये गये हैं—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय। पांच अस्तिकायों के इस समूह का नाम है लोक, विश्व या जगत्। यह किसी के द्वारा कृत नहीं है।

हम देखते हैं कि इस जगत में कुछ ऐसा होता है, जो पहले नहीं था। जहां समुद्र था आज पृथ्वी हो गई। जहां पृथ्वी थी वहां समुद्र हो जाता है। परिवर्तन होता रहता है। कुछ ग्रह बनते हैं और कुछ बिगड़ते रहते हैं। कुछ तारे आते हैं और कुछ चले जाते हैं। हम परिवर्तन को देख रहे हैं तो फिर अनादि-अनंत को कैसे मानें ?

दूसरा विकल्प आया सृष्टि का। विश्व अलग है और सृष्टि अलग है। विश्व है अनादि-अनंत और सृष्टि है सादि-सांत। जिसकी रचना होती है, निर्माण होता है वह सादि-सांत होता है। उसका आदि भी है, अंत भी है। सृष्टि का मतलब है सादि-सांत।

सृष्टि का रचनाकार कौन? इस संदर्भ में जैन दर्शन का मत है—सृष्टि का कर्ता कोई एक व्यक्ति नहीं है, कोई शक्ति नहीं है, कोई ईश्वर नाम का तत्त्व नहीं है। जीव और पुद्गल—दोनों के संयोग से होने वाले निर्माण का नाम है सृष्टि। जीव और पुद्गल का योग मिलता है तो एक चीज बन जाती है।

चेतन और अचेतन की युति,
की अभिधा व्यंजन पर्याय।
शाश्वत विश्व, सृष्टि का अभिनय,
चलता है सक्रिय समवाय।।

जीव, देह से हुआ विनिर्मित,
दृश्य जगत् का रूप विशाल।
जीव मुक्त या जीव युक्त है
उपवन में हर तरु की डाल।।

एक कारण है पारिणामिक भाव। स्वतः परिणमन होता रहता है। न जीव का प्रयत्न, न पुद्गल का प्रयत्न, किंतु स्वाभाविक परिणमन होता है। उसका नाम ही है सृष्टि।

सूक्ष्म स्थूल में परिणत होता,
स्थूल सूक्ष्म फिर हो जाता।
परिणति का वैचित्र्य अकल्पित,
ज्ञेय अचेतन, चिद् ज्ञाता।।

सृष्टि के दो अर्थ हो गए—

1. जीव और पुद्गल के संयोग से होने वाला निर्माण।
2. स्वभाव से होने वाला निर्माण। प्रकृति से होने वाला निर्माण या पारिणामिक भाव की शक्ति से होने वाला निर्माण।

यह जो सृष्टि है, इसका आदिकाल भी है, अंतकाल भी है। क्योंकि जो भी कृत होगा, वह अनंत नहीं हो सकता। जो अनादि नहीं है, वह अनंत नहीं हो सकता।

सृष्टि में जो परिवर्तन होता है, उस परिवर्तन पर अनेक काल और देश-खण्डों में चिंतन किया गया है। हम भारत देश में हैं, पुरानी भाषा में जम्बूद्वीप में हैं। ऐसे भूखण्ड एक नहीं, हजारों-हजार हैं। आज विज्ञान

के क्षेत्र में आकाशगंगाओं और दूरवर्ती नीहारिकाओं को सूक्ष्म एवं संवेदनशील उपकरणों से देखा गया। वे सैकड़ों प्रकाशवर्ष की दूरी पर अवस्थित हैं।

जैन गणना में तीन शब्द बहुत महत्त्व के हैं—शीर्षप्रहेलिका, पल्योपम और सागरोपम। पल्योपम और सागरोपम का काल कितना बड़ा है; आदमी सोच भी नहीं सकता। पहले यह लगता था कि कितनी बड़ी कल्पना की गई है, किंतु जब प्रकाशवर्ष की कल्पना सामने आई तब लगा—प्रकाशवर्ष की कल्पना सागरोपम तक तो नहीं पहुंची, पर उसके आस-पास पहुंचनेवाली कल्पना है। प्रकाश किरण की गति एक सेकंड में 1,86,000 मील है। इस आधार पर हम एक वर्ष में गति की कल्पना करें तो कितना बड़ा काल है? कोई कल्पना नहीं कर सकता। सैकड़ों प्रकाशवर्ष की दूरी पर हजारों नीहारिकाएं हैं। कितना विशाल है यह हमारा जगत!

सृष्टि को समझने के लिए कालखंड के बारे में विचार किया तो काल-चक्र का सिद्धांत सामने आया। कालचक्र के बारह काल-खण्ड हैं। ये सारे परिवर्तन के हेतु बनते हैं। इनमें परिवर्तन होता रहता है। कालचक्र के परिवर्तन के आधार पर इनके दो भाग कर दिए गए—एक कालखण्ड का नाम है अवसर्पिणी और दूसरे कालखण्ड का नाम है उत्सर्पिणी। ये नाम यथार्थ गुण के आधार पर किए गए। जिस कालखण्ड में पदार्थ की शक्ति बढ़ती चली जाती है उसका नाम है उत्सर्पिणी-काल। इसमें हीन से उत्कर्ष की ओर उत्सर्पण होता है। जिस कालखंड में उत्कर्ष से अपकर्ष की ओर गति होती है, वह है अवसर्पिणी। इसमें पदार्थ की शक्ति क्रमशः घटती चली जाती है।

परिवर्तन का हेतु काल,
वह जल प्रवाह ज्यों बहता है।
द्वादशार यह कालचक्र,
गतिशील निरंतर रहता है।।

अवसर्पण में वस्तु-गुणों का
होता है क्रम क्रम से ह्रास।
उत्सर्पण में उनका होता,
उसी नियम से क्रमिक विकास।।

अभी जिस कालखण्ड में हम जी रहे हैं, वह अवसर्पिणी कालखण्ड है। अवसर्पिणी के छह कालखण्डों में अंतर कितना है, यह नाम के आधार पर समझ सकते हैं—

1. सुषम-सुषमा
2. सुषमा
3. सुषम-दुःषमा
4. दुःषम-सुषमा
5. दुःषमा
6. दुःषम-दुःषमा।

पहला कालखण्ड है सुषम-सुषमा। उसमें इतना ज्यादा सुख है कि दुःख नाम की कोई कल्पना ही नहीं होती। कोरा सुख है, एकांत सुख है।

दूसरा कालखंड है सुषमा। एकांत हट गया। सुख है, पर एकांत नहीं। कुछ न्यूनता आ गई।

तीसरा कालखंड है सुषम-दुःषमा। इसमें थोड़ा-थोड़ा दुःख प्रारंभ हो गया। जो आदमी दुःख नहीं जानता था, वह दुःख का भी अनुभव करने लगा। सुख-दुःख का जोड़ा हो गया।

एक व्यक्ति ने एक कंजूस आदमी से पूछा—'बताओ! तुम्हें कभी अनुभव हुआ कि दुःख के बाद सुख कैसे होता है?'

उसने कहा—'मेरा अनुभव है।'
'क्या अनुभव है?'

एक अतिथि आया, मैंने कहा—'आप आ गए हैं तो चाय-पानी लीजिए, नाश्ता कीजिए—यह कहते हुए मुझे बड़ा दुःख हो रहा था। वह बोला—'मुझे नाश्ता नहीं करना है, मैं करके आया हूं। यह सुनकर मुझे बहुत सुख हुआ।'

कभी सुख के बाद दुःख और कभी दुःख के बाद सुख—यह क्रम चलता रहता है। एकांत सुषमा में यह

नहीं था। व्यक्ति इतना स्व-लीन होता था कि उसके मन में कोई कल्पना ही नहीं आती थी। पहला अर बीता। उस समय स्थिति क्या थी, इसका सूत्रकार ने, आचार्यों ने बहुत विशद वर्णन किया है। उस समय आहार इतना अल्प था कि आदमी तेला तो स्वाभाविक रूप से करता था। एकांत सुषमा के मनुष्य तीन दिन के बाद भोजन करते। भोजन भी कितना? एक चने की दाल जितना। आप सोच सकते हैं कि यह कैसे हो सकता है? इसका कारण है—जब पदार्थ में पोषक तत्त्व ज्यादा होता है, ज्यादा खाने की जरूरत नहीं होती। एक बार खाया हुआ बहुत समय तक पोषण देता रहता है। उस समय मिट्टी में इतना पोषक तत्त्व था, भूमि में इतना स्वाद था कि आज की चीनी में उससे हजार गुना कम स्वाद है। नदी के जल में जितनी मिठास थी, उतनी मिठास आज की चीनी में नहीं है। उस समय में वर्ण, गंध, रस, स्पर्श—ये सारे उत्कृष्ट थे। इतनी पोषण शक्ति थी कि चने की दाल जितना खा लिया तो तीन दिन भूख लगने का प्रश्न ही नहीं था।

यह कल्पना से परे की बात नहीं है। आज भी कुछ ऐसी चीजें हैं, जिन्हें खा लें तो भूख नहीं लगेगी। आज भी ऐसी औषधियां हैं, जिन्हें खाने के बाद भूख नहीं लगती। 'अप्पामार' का बीज किसी ने खा लिया तो पांच-दस दिन खाना खाने की जरूरत नहीं है। ऐसी अनेक औषधियां आज भी ज्ञात-अज्ञात हैं। क्या अंतरिक्ष यात्रियों के लिए रसोईघर साथ ले जाया जाता है? कुछ ऐसे सत्त्व निकाल लेते हैं, जो पोषक होते हैं। वह सत्त्व इतना पोषण देता है, जितना सामान्य वस्तु नहीं देती। उस समय की वस्तुओं में सार इतना था कि एक बार खाने के बाद खाने की जरूरत नहीं होती। यह थी भोजन, पोषक तत्त्व की विशेषता। मिट्टी की विशेषता, पानी की विशेषता। पर्यावरण पूर्णतः शुद्ध था। श्वास के साथ पुद्गल भी अच्छे जाते और वे पूरी पोषण शक्ति का काम करते, इसलिए आदमी प्रलंब काल तक जीते थे।

जो व्यक्ति जितना लम्बा श्वास लेगा उतना लम्बा जीयेगा। जो व्यक्ति जितना छोटा श्वास लेगा उतना जल्दी मरेगा। कुत्ते और कछुए को देख लें। कछुए की आयु सौ वर्ष से ज्यादा है। वह लंबा श्वास लेता है। कुत्ता कम जीता है। वह छोटा श्वास लेता है। जो ज्यादा बोलता है वह कुत्ते की भांति छोटा श्वास लेता है और कम जीता है। यौगलिकों की कषाय उपशान्त थी, उनमें कोई उत्तेजना नहीं थी, आवेश नहीं था। इसलिए उनका श्वास भी लंबा था, आयुष्य भी लंबा था।

मधुर शर्करा से अनंत गुण,
मिट्टी का रसमय आस्वाद।
सरिता के जल की मिठास में,
भी मिलता उसका संवाद।।

पोषक तत्त्व सघनतम अर्जित,
भोजन की मात्रा अति अल्प।
तीन दिवस के अंतराल से,
होता खाने का संकल्प।।

वज्रऋषभनाराच संहनन,
अंतःकरण नितांत पुनीत।
तीन पल्य का जीवन लंबा,
आयुमान अति तर्कातीत।।

यह प्रथम अर की स्थिति का चित्रण है। सघन पोषक तत्त्व, तीन दिन के अंतराल से भोजन और वह भी अत्यल्प। उपशांत कषाय, पवित्र अन्तःकरण, वज्रऋषभनाराचसंहनन, प्रलम्ब आयुष्य—ये उस युग की स्वाभाविक विशेषताएं थीं। क्रमशः...

कठिनाई की स्थिति में भी सत्यनिष्ठा, मनोबल और सत्पुरुषार्थ श्रेयस्कर होते हैं।

ऋजुता से क्या मिलेगा?

आचार्य महाश्रमण

प्रश्न किया गया—अज्जवयाए णं भंते! जीवे किं जयणइ? भंते! आर्जव से जीव क्या निष्पन्न करता है? उत्तर दिया गया—अज्जवयाए णं काउज्जुययं भावुज्जुययं भासुज्जुययं अविसंवायणं जणयइ। अविसंवायणसंपन्नयाए णं जीवे धम्मस्स आराहए भवइ। आर्जव से वह काय ऋजुता, भाव ऋजुता, भाषा ऋजुता और अविसंवादन को निष्पन्न करता है। अविसंवादन-संपन्नता से जीव धर्म का आराधक बन जाता है।

अध्यात्म की साधना में कषाय-विजय का महत्त्व है। कषाय-विजय का एक आयाम है—ऋजुता। क्रोध-विजय का संबंध शांति के साथ, मान-विजय का संबंध मृदुता के साथ, लोभ-विजय का संबंध मुक्ति यानी निर्लोभता के साथ और माया-विजय का संबंध ऋजुता के साथ होता है। जिसमें ऋजुता होती है, वही व्यक्ति सत्य की सम्यक् आराधना कर सकता है। जैसे सूर्य पर बादलों का आवरण आने से वह निस्तेज हो जाता है, वैसे ही माया का आवरण आ जाने से सत्य का सूर्य भी निस्तेज हो जाता है। जहां माया है, वहां अविश्वास को उत्पन्न होने का अवसर मिल जाता है। आचार्य सोमप्रभसूरि ने सूक्ति मुक्तावली में सुंदर कहा है—

मायामविश्वासविलासमन्दिरं,
दुराशयो यः कुरुते धनाशया।
सोऽनर्थसार्थं न पतन्तमीक्षते,
यथा बिडालो लगुडं पयः पिबन्॥

माया अविश्वास का क्रीड़ाघर है। दुष्ट अभिप्राय वाला व्यक्ति धन की इच्छा से माया करता है। वह अर्थ-अनर्थ की वैसे ही परवाह नहीं करता, जैसे दूध पीता हुआ बिलाव लाठी के प्रहार की परवाह नहीं करता। इसी प्रकार माया करनेवाला व्यक्ति भी यह चिंतन नहीं करता है कि मैं पकड़ा जाऊंगा तब मेरा क्या हाल होगा?

मायाचार साधना का बड़ा विघ्न है। साधक को सरल होना चाहिए। जो बात जैसी है, उसको उसी रूप में प्रस्तुत करना चाहिए। जिसमें सरलता है, उसमें संतता है। संत का लक्षण है—सरल होना। मैं संत की परिभाषा यह करता हूं कि जो शांत होता है, वह संत होता है। जो अशांत है, उग्र है। जिसमें कषाय का प्राबल्य है। वह संत नहीं है अथवा उसकी संतता में कमी है। इसलिए साधु को सरल होना चाहिए। सरलता के संदर्भ में शिशु को उदाहृत किया जाता है। परंतु बच्चे की सरलता अज्ञान से जुड़ी हुई है इसलिए मैं उसे पर्याप्त नहीं मानता। वह जानता ही नहीं कि कुटिलता कैसे की जाती है? किंतु जो कुटिलता को समझता है, फिर भी कुटिलता का आचरण नहीं करता। सरलतापूर्ण व्यवहार करता है। वह पूजनीय, आदरणीय और महान व्यक्ति होता है। अज्ञानविहीन सरलता का विशेष महत्त्व होता है।

धोखा देना कोई बड़ी बात नहीं, ईमानदारी रखना बड़ी बात है। ईमानदारी जीवन में तभी रह सकती है, जब सरलता होती है। कई बार आदमी जैसे-तैसे दुष्कार्य करके कुछ पाने का प्रयत्न करता है। अध्यापक महोदय ने विद्यार्थी से गणित का एक प्रश्न पूछा—वत्स! तुम्हारे पिताजी की अनाज की दुकान है। मान लो कि एक रुपए में एक किलोग्राम गेहूं आता है तो दस रुपए में

तुम्हारे पिताजी कितने किलोग्राम गेहूं देंगे? लड़के ने कुछ सोचा और फिर कहा—मेरे पिताजी लगभग साढ़े नौ किलोग्राम गेहूं देंगे। अध्यापक—क्या तुम्हारे पिताजी गणित नहीं जानते? विद्यार्थी—सर! मेरे पिताजी गणित जानते हैं, किंतु आप मेरे पिताजी को नहीं जानते। वे जब दस किलोग्राम गेहूं तोलेंगे, तब आधा किलोग्राम की हेराफेरी तो आसानी से कर ही लेंगे।

ऋजुता का अभ्यास होने से काय-ऋजुता निष्पन्न होती है। आदमी का शरीर टेढ़ा न रहे। वह सीधा बैठे। टेढ़ा बैठने से शारीरिक ऋजुता में कमी आ सकती है, यह तो सामान्य बात है। मूल बात है कि शरीर के द्वारा ऐसा कोई प्रयास न करना, जो किसी को धोखा देने वाला हो। शारीरिक संकेतों के माध्यम से भी किसी को धोखा दिया जा सकता है। जैसे कोई चीज है तो पूर्व दिशा में और इशारा कर दिया पश्चिम दिशा की ओर तो यह गलत इशारा काय-ऋजुता में आ जाता है। भाव-ऋजुता का मतलब है भावों में कुटिलता न आए। भावशुद्धि बनी रहे। भावशुद्धि तभी बनी रह सकती है, जब मन में सरलता हो, पवित्रता हो। जब मन में सरलता होगी, तब भाषा में भी ऋजुता आ सकेगी। फिर भाषा के द्वारा किसी को धोखा नहीं दिया जा सकेगा।

संसार में हम देखते हैं कि भाषा के द्वारा किस प्रकार वंचना की जा सकती है। शादी का प्रसंग था। लड़के और लड़की के पिता में परस्पर वार्तालाप चल रहा था। लड़की के पिता ने पूछा—आपका बेटा कितना पढ़ा हुआ है? क्या कार्य करता है? उसका स्वभाव कैसा है? लड़के का पिता बोला—मेरा बेटा सी.ए. है। अच्छी नौकरी है और स्वभाव तो उसका इतना अच्छा है कि सबको एक दृष्टि से देखता है। अब तुम्हारी लड़की के बारे में बताओ कि वह कितनी पढ़ी-लिखी है? गृहकार्य आदि करने में कितनी दक्ष है? लड़की के पिता ने कहा—मेरी बेटी एम. कॉम है और कार्य करने में तो इतनी श्रमशीला है कि दिन-रात एक पैर पर कार्य करती रहती है। दोनों ने तत्काल शादी का निर्णय कर लिया और जल्दी ही मुहूर्त निकलवा लिया। शादी के बाद रहस्य खुला कि जिस लड़के के लिए कहा गया था कि सबको एक दृष्टि से देखता है, वह लड़का काना था। उसके आंख एक ही थी और जिस लड़की के लिए कहा गया था कि दिन-रात एक पैर पर काम करती है, वह पंगु थी। उसके पैर एक ही था। यह वंचना है।

शास्त्रकार ने कहा कि जिसमें ऋजुता आ गई, वह भाषा के द्वारा छलना नहीं करेगा। उसकी भाषा में सचाई होगी, ऋजुता होगी। अंतिम बात बताई गई कि ऋजुता से अविसंवादन योग निष्पन्न होता है। अविसंवादन का एक अर्थ यह किया जाता है कि किसी कार्य का संकल्प कर उसे करना, दूसरों को न ठगना। दूसरा अर्थ यह किया जाता है कि कथनी-करनी में समानता रखना। संस्कृत साहित्य में कहा गया है—

मनस्यन्यद् वचस्यन्यत्, कार्ये चान्यद् दुरात्मनाम्।
मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।।

जिसके मन में जो है, वही वाणी में है। जो वाणी में है, वही आचरण में है, वह महात्मा होता है। जिसके मन में कुछ है, वाणी में कुछ है, आचरण में कुछ और है। यानी वाणी अलग है और आचरण अलग है, वह दुरात्मा होता है। यह कथनी-करनी की भिन्नता विसंवादन योग कहलाता है। जिसने ऋजुता का अभ्यास कर लिया, वह अविसंवादन योग बन जाता है। उसकी कथनी-करनी में समानता रहती है और उसके प्रति विश्वास भी रहता है कि यह किसी को धोखा नहीं देगा। कोई व्यक्ति यदि बेईमानी करके लाखों-करोड़ों रुपए कमा लेता है और कोई व्यक्ति ईमानदारी से पांच सौ रुपए ही कमाता है तो मेरी दृष्टि में गार्हस्थ्य धर्म के अनुसार करोड़ों कमाना कोई खास बात नहीं है, बनिस्पत पांच सौ रुपए कमाना महत्त्वपूर्ण है।

ईमानदारी एक बड़ी संपत्ति है। जो व्यक्ति करोड़ों के लिए इस बड़ी संपत्ति यानी ईमानदारी को खो देता है, उसके जीवन में ऋजुता का ह्रास होने लगता है। साधु में तो ऋजुता होनी ही चाहिए। एक धार्मिक गृहस्थ में या सद्गृहस्थ में भले पूर्णतया ऋजुता न भी रह सके, किंतु काफी अंशों में रहनी चाहिए। यह ऋजुता का भाव कल्याणकारी सिद्ध हो सकेगा। ❐

आजादी की स्वर्ण जयंती

आचार्य तुलसी

15 अगस्त 1947 के दिन भारत स्वतंत्र हुआ और सन् 1997 के अगस्त महीने में स्वतंत्रता की आधी सदी पूरी हो रही है। इसलिए भारत सरकार इस बार स्वतंत्रता-दिवस को स्वर्ण जयंती वर्ष के रूप में मना रही है। स्वतंत्रता के मूल्य या महत्त्व को देखते हुए यह कोई बड़ा निर्णय नहीं है। स्वतंत्रता दिवस को राष्ट्रीय पर्व का गौरव उपलब्ध है। पर्व–त्योहार, उत्सव, जयंती, आयोजन आदि होते ही रहते हैं। इनके होने से लोक जीवन पर क्या प्रभाव होता है और न होने से किस प्रकार की रिक्तता का अनुभव होता है? इन दो प्रश्नों पर गंभीरता से विचार करने की अपेक्षा है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति एक परिघटना है। स्वतंत्रता का अहसास उस परिघटना का परिणाम है। बर्थ-डे की तरह वर्ष में एक बार स्वतंत्रता दिवस मनाकर उसे विस्मृति के थैले में डाल देना ही पर्याप्त है अथवा हर पल स्वतंत्रता को जीकर दिखलाना भारतीय लोगों का लक्ष्य है? वार्षिकी की तरह रजतजयंती और स्वर्णजयंती भी मनाई जा सकती है, पर उत्सव मनाने की सार्थकता तभी है, जब जनता खुशहाल हो। भारत की आबादी एक अरब के आंकड़े को छूनेवाली है। संभावना की जा रही है कि 21वीं सदी में प्रवेश करते समय भारत अपनी विकास यात्रा का एक बिंदु जनसंख्या वृद्धि का कीर्तिमान बनाकर प्रस्तुत करेगा।

किसी भी राष्ट्र के लिए संख्याबल बहुत बड़ी शक्ति है, पर यह शक्ति उसी स्थिति में है, जब जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति संभव हो। जिस देश में गांवों की आधी से अधिक आबादी गरीबी की रेखा से नीचे का जीवन यापन कर रही हो, वह संख्याबल के आधार पर किस क्षेत्र में विकास करेगा? जहां भोजन, पानी, आवास, स्वास्थ्य और शिक्षा आदि की भी समुचित व्यवस्था न हो, वहां की जनता राष्ट्र के प्रति वफादार कैसे होगी? जिस देश में बीस करोड़ से अधिक लोग बेरोजगार अथवा अर्द्ध-बेरोजगार हों, उस देश की आजादी के पचास वर्षों का लेखा-जोखा कैसा होगा? जहां लगभग चार करोड़ शिक्षित युवक बेरोजगार हों, वहां विकास के नए कार्यक्रम मुंह चिढ़ाते-से प्रतीत होते हैं।

आजादी के लिए संघर्ष की तैयारी

मनुष्य बहुत दिनों से भूखा हो और उसे एक साथ ढेर सारा भोजन उपलब्ध हो जाए तो वह संयम या विवेक की बात भूल जाता है। परिणाम की चिंता किए बिना की गई प्रवृत्ति

प्रायः अहितकर होती है। भारत सदियों से परतंत्र था। भारतीय जनता भूल ही गई थी कि उसे पुनः स्वतंत्रता प्राप्त हो सकती है। वह पहले मुगलों के अधीन रही, फिर उस पर अंग्रेज हावी हो गए। व्यापारिक कंपनियों के माध्यम से ब्रिटिश लोग भारत में आए। उन्होंने व्यापार का अपना शिकंजा कसा। उस क्षेत्र में सफल होने से उनकी महत्त्वाकांक्षाएं बढ़ी। अठारहवीं शताब्दी के मध्य में अंग्रेजों ने सत्ता हथियाने की योजनाएं बनाईं और धीरे-धीरे वे काबिज हो गए।

अंग्रेजों के बढ़ते प्रभाव को रोकना कठिन था, फिर भी समय-समय पर भारतीय लोगों ने विद्रोह किए। अंग्रेजों के पास भारत पर शासन करने का एक सुनियोजित कार्यक्रम और आधुनिक हथियार थे। उन्होंने विद्रोही नायकों का दमन किया। उन्हें यातनाएं देने और मौत के घाट उतारने में बर्बरता से काम लिया गया। अंग्रेजों की दमननीति, भेदनीति और भारतीय लोगों के हितों को नजरअंदाज करने की मनोवृत्ति से असंतुष्ट भारतीयों ने कुछ राजनैतिक संस्थाएं बनानी शुरू कर दीं। उन्हीं परिस्थितियों में कांग्रेस का उदय हुआ। अंग्रेजों ने कांग्रेस को थोड़े से भारतीयों की संस्था कहकर फूट डालने का प्रयास किया, किंतु महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता संग्राम का बीड़ा उठाया। उन्होंने लोगों में स्वाधीनता की ललक जगाई। उसके लिए संघर्ष करने की शक्ति पैदा की, नई संभावनाओं का आश्वासन दिया और एक आंदोलन का शुभारंभ किया। उनके प्रति देश में इतना आकर्षण बढ़ा कि कई व्यापारियों ने अपना करोड़ों का व्यापार छोड़ दिया, वकीलों ने वकालत छोड़ दी और वे गांधी के साथ हो गए। उस समय देश में ऐसा वातावरण बना कि जनता के लिए सुख-सुविधा और हास-विलास सब गौण हो गए।

कैसा था आजादी मिलने का मुहूर्त?

महात्मा गांधी के नेतृत्व में भारत की विशिष्ट प्रतिभाओं को काम करने का मौका मिला। उनका राष्ट्रप्रेम और समर्पण इतना प्रबल था कि उन्होंने सत्ता के सिंहासन पर बैठे लोगों में खलबली मचा दी। गांधीजी ने पूरे देश का दौरा कर जनता को स्वाधीनता के लिए छेड़े गए आंदोलन की अवगति दी। वे अपने आंदोलन को अहिंसात्मक ढंग से चलाना चाहते थे। उनकी प्रेरणा से अनेक भारतीयों ने सरकारी उपाधियां छोड़ दीं। विधानमंडलों का बहिष्कार किया। चुनावों की उपेक्षा की। सरकारी कर्मचारियों ने नौकरियां छोड़ दी। छात्रों व शिक्षकों ने सरकारी स्कूलों व कॉलेजों में पढ़ना व पढ़ाना छोड़ दिया। विदेशी वस्त्रों की होली जलाई गई। विदेशी वस्तुओं का विक्रय करनेवाली दुकानों पर धरने दिए गए। पुरुषों की तरह महिलाएं भी जन-जागरण के अभियान में साथ थीं। उन्होंने मदिरापान के विरोध में प्रदर्शन किया। कुल मिलाकर ब्रिटिश सरकार का आसन हिल गया।

आखिर सन् 1947 में भारत आजाद हुआ। लगता है कि मुहूर्त कोई बहुत अच्छा नहीं था। इसलिए आजादी मिली, वह भी रक्तरंजित। जिस देश की धरती पर मानवजाति की एकता के उद्घोष लगाए गए, उसी देश में हिंदू और मुसलिम मानसिकता ने कहर ढा दिया। लाखों लोगों की अदला-बदली का चिंतन भी सुविवेकपूर्ण नहीं था। उसके आगे एक-दूसरे को मारने का संकल्प तो अत्यंत नृशंसतापूर्ण था। जातीय और सांप्रदायिक उन्माद के उन क्षणों में भी जिन हिंदुओं ने मुसलमानों को पनाह दी और जिन मुसलमानों ने हिंदुओं को संरक्षण दिया, वे मानवता के सच्चे प्रतीक थे। भारत का विभाजन गांधीजी को कतई अभीष्ट नहीं था, किंतु वह अंग्रेजों का सुनियोजित षड्यंत्र था। उन्होंने एक देश को दो भागों में विभाजित ही नहीं किया, परस्पर घृणा और संदेह का बीज बोकर सबके दृष्टिकोण को बदल दिया।

नक्शा ही दूसरा होता

स्वतंत्रता-स्वतंत्रता की रट लगाते-लगाते भारत स्वतंत्र हो गया, पर भारतीय जनता ने स्वतंत्र देश में रहने या जीने की अर्हता नहीं पाई। अपने कर्तव्यों को अनदेखा कर उसने स्वाधीनता का जश्न मनाया। संपूर्ण समर्पण भाव से काम करनेवाले व्यक्तियों में भी नेतृत्व

की भूख प्रबल हो गई। गांधीजी की इच्छा थी कि स्वतंत्रता प्राप्ति के लक्ष्य तक पहुंचने के बाद कांग्रेस को भंग कर देना चाहिए तथा कांग्रेसी नेताओं को सत्ता के व्यामोह से दूर रहना चाहिए और गांव-गांव तथा घर-घर जाकर लोक-शिक्षण का काम करना चाहिए। गांधीजी के इस सुझाव को मान्य कर लिया जाता तो आज देश का नक्शा कुछ दूसरा ही होता। गांधीजी के प्रति लोगों की आस्था नहीं थी, यह बात भी नहीं थी। सवाल एक ही था कि कांग्रेस के बिना सत्ता संभालेगा कौन?

पूरा होकर भी धूमिल रहा सपना

स्वतंत्रता प्राप्ति के प्रारंभिक वर्षों में देश में नेताओं की कमी भले ही रही हो, पर बाद में नेता कुकुरमुत्तों की तरह उग आए। भारतीय लोकतांत्रिक शासन-प्रणाली में नेता की अर्हता के मानक निर्णीत नहीं हैं। सांसद या विधायक बनने के लिए न तो साक्षर होने की ही अनिवार्यता है और न ही सुसंस्कृत होना आवश्यक है। पार्टी के समर्थन से, पैसे के बल से, अवैध उपायों से अथवा जैसे-तैसे चुनाव जीतकर सत्ता के गलियारे में पहुंचनेवाला व्यक्ति अपने चरित्र का प्रमाण-पत्र क्यों देगा? राष्ट्रप्रेम, स्वानुशासन, सहानुभूति, संवेदनशीलता आदि चारित्रिक मूल्यों की उपेक्षा से समर्पित व्यक्तियों का ही दुष्काल हो गया। स्वार्थ चेतना ने परार्थ और परमार्थ चेतना को जड़ीभूत बना दिया। ऐसी स्थिति में आजादी पाने का सपना पूरा होकर भी धूमिल-सा रहा। जिन लोगों से देश को बड़ी-बड़ी आशाएं थीं, वे सुविधाभोगी और स्वार्थपरायण हो गए। जनता को किसी प्रकार का दायित्वबोध था नहीं, वह सरकार के भरोसे निष्क्रिय होकर बैठ गई।

राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण

कुछ लोग केवल ईश्वर-भक्ति या उपासना के बल पर मोक्ष की साधना करना चाहते हैं और कुछ लोग केवल तत्त्वज्ञान के सहारे मंजिल तक पहुंचना चाहते हैं। कुछ लोग भाग्य के भरोसे बैठे रहते हैं और कुछ लोग दिन-रात एक करके पुरुषार्थ करते हैं। महाकवि कालिदास ने इन लोगों को असफलता का प्रमाण-पत्र दे दिया। भगवान महावीर के अनेकांत दर्शन का आलंबन लेकर कवि ने कहा—

नालंबते दैष्टिकतां न निषीदति पौरुषे।
शब्दार्थौ सत्कविरिव द्वयं विद्वानपेक्षते।।

श्रेष्ठ कवि वह होता है, जो शब्द और अर्थ—दोनों पर ध्यान देकर रचना करता है। विद्वान वह होता है, जो भाग्य और पुरुषार्थ दोनों में संतुलन स्थापित करके चलता है। इसी प्रकार राजा और प्रजा अथवा नेता और जनता के सम्मिलित प्रयास से राष्ट्रीय चरित्र का निर्माण संभव है।

यात्रा की सार्थकता के उपाय

स्वाधीनता का सुख अनिर्वचनीय होता है। मुझे नहीं लगता कि भारतीय जनता ने उस सुख का अनुभव किया है। देश के जैसे हालात हैं, उन्हें देखते हुए कहा जा सकता है कि आधी शताब्दी क्या, पूरी शताब्दी में भी उसको पाना मुश्किल है। यह काम मुश्किल हो सकता है, असंभव नहीं। अब हमारे पास समय तो नहीं है, पर 'जब जागे तभी सवेरा'—इस कहावत के अनुसार आज से ही प्रयत्न प्रारंभ किया जाए तो कुछ परिणाम आ सकते हैं।

पचास वर्ष पहले मिली स्वाधीनता को संपूर्ण भारत की जनता महसूस करे, निश्चित एवं सुरक्षित भविष्य की आशा से अपनी जीवनशैली बदले, लोकतंत्र में जीने का प्रशिक्षण प्राप्त करे, विकास की अवधारणाएं बदले, सत्ता या संपदा को दोयम दर्जा देकर प्रथम स्थान पर चरित्र को रखे। अन्याय एवं कदाचार की घटनाओं से जूझने के लिए जटायुवृत्ति विकसित करें, केकड़ावृत्ति छोड़ें, भद्रा जैसी माताएं सामने आएं और देश के नेता अहंकार और ममकार की चेतना को परिष्कृत कर सकें तो आधी शताब्दी की यात्रा को सार्थक बनाया जा सकता है। ❑

आचार्यश्री तुलसी द्वारा स्वतंत्रता दिवस पर लिखा अंतिम लेख।

स्वतंत्रता का मूल्य

- वैयक्तिक स्तर पर स्वतंत्रता का अर्थ होता है—अपने अनुशासन द्वारा संचालित जीवन-यात्रा। राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में स्वतंत्रता का अर्थ होता है—राष्ट्रीय संविधान द्वारा संचालित जीवन-यात्रा।
- जो वर्तमान से कट जाता है, वह शीघ्र ही गुलाम बन जाता है, जो वर्तमान के साथ चलता है, वह स्वतंत्र रह सकता है।
- जो लोग अपने पर संयम कर लेते हैं, वे न केवल स्वयं स्वतंत्र बनते हैं, अपितु दूसरों की स्वतंत्रता की भी रक्षा कर सकते हैं।
- बलवती भावना, प्रशस्त इच्छा या जागृत विवेक से जो काम होता है, वह मनुष्य की स्वतंत्र चेतना की प्रेरणा है।
- स्वतंत्रता की अर्हताएं हैं—आवेश पर नियंत्रण, अनुशासन का पालन, स्वार्थ का सीमाकरण और संयम का अभ्यास।
- हर व्यक्ति को सोचने की स्वतंत्रता है, पर इसका मतलब यह तो नहीं है कि किसी के चिंतन से मेल न खाए तो उस पर कीचड़ उछाला जाए।
- स्वतंत्र और मुक्त आकाश में विहरण करनेवाला पक्षी भी स्वर्ण-पिंजरे को कैद मानता है, भले ही उसे खाने को मेवा-मिष्टान्न ही क्यों न मिले।
- स्वतंत्र वह है, जो स्वार्थ के पीछे नहीं अपितु न्याय के पीछे चलता है।
- एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के सापेक्ष रहकर ही स्वतंत्र रह सकता है।
- जो सीमा करना नहीं जानता, वह स्वतंत्र नहीं हो सकता।
- विजातीय बंधनों को तोड़े बिना कोई भी आदमी स्वतंत्र नहीं हो सकता।
- स्व की अनुभूति और आत्मतोष ही सच्ची स्वतंत्रता है।
- पुरुषार्थ और उसका परिणाम यदि किसी दूसरे के अधीन हो तो हमारे स्वातंत्र्य का कोई मूल्य नहीं रहता।
- विकास के साथ दायित्व की भावना आए, तभी स्वतंत्रता का मूल-स्वरूप निखर सकता है।
- स्वतंत्रता की चाह उसी व्यक्ति की सच्ची हो सकती है, जो दूसरों की स्वतंत्रता में बाधा नहीं डालता।
- योग्यता के बिना मिली हुई स्वतंत्रता कभी-कभी परतंत्रता से अधिक अहितकर हो जाती है।

सवेरा अभी तक हुआ नहीं

साध्वी शुभप्रभा

15 अगस्त 1947 की मध्य रात्रि में जब सारा संसार निद्रामग्न था। भारतीय संसद हॉल खुशियों की दूधिया चांदनी से नहा उठा। अरमानों के दीप जले। प्रसन्नता का प्रतीक झंडा लहराने लगा। उस दिन स्वतंत्रता-सूर्य को एक साथ हजारों लोगों ने मिलकर अपनी भावनाओं का अर्घ्य चढ़ाया। सतरंगी कल्पनाओं में डुबकियां लगाकर परम आह्लाद का अनुभव किया। काश! वे क्षण स्थापित हो पाते, उन कल्पनाओं को आकार मिल पाता और मानसिक दासता की बेड़ियां टूट पातीं।

शताब्दियों की दासता के पश्चात् भारतीयों ने स्वतंत्रता की सांस ली। अतएव राष्ट्र की कोटि-कोटि जनता अपने अभ्युदय के रंगीन सपनों में खो गई। देश के कर्णधारों का ध्यान आर्थिक और सामाजिक विकास पर केंद्रित हो गया। विदेशों से अरबों का ऋण लेकर बड़ी-बड़ी योजनाएं-परियोजनाएं, भीमकाय कल-कारखाने और यातायात के प्रचुर साधन—इन राष्ट्र निर्माणकारी तत्त्वों को जुटाने में तल्लीन हो गए।

लेकिन आदमी जैसा सोचता है बहुधा वैसा होता नहीं। आजादी मिलने से पूर्व भारतीय मानस-पटल पर अंकित ये दृश्य कि आजादी के मिलते ही भारत का मानचित्र बदल जाएगा, पुनः दूध और दही की नदियां बहने लगेंगी, रामराज्य प्रस्थापित होगा। चहुं ओर अमन की बंशी बजेगी। समस्याओं का चक्रव्यूह सदा-सदा के लिए चकनाचूर हो जाएगा।

किंतु वर्तमान भारत की स्थिति का चित्र हमारी आंखों की पुतलियों में प्रतिबिंबित है। आज देश में कानून अंधा है और न्याय इतना कीमती हो गया है कि साधारण आदमी उसे पाने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा है। बढ़ती हुई जरूरतों, आकांक्षाओं ने आदमी को बेईमान बना दिया है। धनिक पूंजी की सुरक्षा में व्यस्त है और नेता कुर्सी में उलझ रहे हैं। हर कोई अपने स्वार्थ से बुरी तरह चिपटा हुआ है। समाज में अनाचार और भ्रष्टाचार के कीड़े बिलबिला रहे हैं। नंगे फैशन ने हमारी संस्कृति को आवरणहीन बना दिया है और पश्चिमी सभ्यता का घुन उसे खोखला किए दे रहा है। घासलेटी उपन्यासों, नंगी और सस्ती उत्तेजक फिल्मों के कारण नौजवान गुमराह होते जा रहे हैं। संयम, नैतिकता का ह्रास हो रहा है। बढ़ती हुई आबादी के कारण धरती हमारा पेट न भरने के लिए लाचार हो गई है। शायद इन्हीं परिस्थितियों के सिंहावलोकन के प्रति कवि मानस की व्यथा अभिव्यक्त हुई इन पंक्तियों में—

आधी रात को मिली आजादी,
सवेरा अभी तक हुआ नहीं।।

ज्योंही मैंने इन पंक्तियों को पढ़ा—एकबारगी मस्तिष्क में बिजलियां-सी कौंधने लगी। अर्थ नहीं समझ पाई मैं इनका। फिर भी कवि-मन की तरफ से उठनेवाली उस पीड़ा का स्पर्श करना चाहती थी। इसलिए देश के वर्तमान हालातों से साक्षात्कार करने का प्रयास किया और सफलता भी मिली।

आर्थिक संकट—सुना है, पढ़ा है और देखा भी है कि सभी देशों में सर्वोदय की चर्चा का बाहुल्य था और आज भी है। आचार्य विनोबा भावे तथा उनके अनुयायियों ने 'एक सबके लिए और सब एक के लिए' की आवाज को बुलंद किया। समाजवाद और साम्यवाद के सिद्धांत की पृष्ठभूमि में कुछ परिकल्पनाएं प्रस्तुत की गई है। किंतु आशा-निराशा में परिवर्तित हो गई जब देखा एक किसान परिवार को आर्थिक विपन्नता से जूझते हुए। रोटी-रोजी की चिंता में उसका हौसला

पस्त था। विकट समस्या थी उसके सामने। क्या करे वह? भीख मांगे, डाका डाले या चोरी करे, पर भारतीय संस्कृति का रक्त प्रवाहित था उसकी नस-नस में। यद्यपि कहने को तो उसे 'अन्नदाता' के गरिमापूर्ण शब्द से संबोधित किया जाता है, पर अन्न का कोर कैसे उसके मुंह में पहुंचता है भला यह कोई उससे पूछे तो सही।

उस अनुभवी मुखिया ने कहा—खेतों के लिए बैल नहीं है तो कोई बात नहीं। बैल के स्थान पर हम जुतेंगे। जहां आदमी को बैल बनना पड़ता है उस देश के मौजूदा हालातों को देखकर आंखें स्तब्ध रह जाती हैं और बरबस इस बात को स्वीकार करना पड़ता है—सवेरा अभी तक हुआ नहीं!

राजनैतिक स्थितियां—किस्सा कुर्सी का आज जन-जन के अधरों पर नर्तन कर रहा है। कुर्सी हथियाने के लिए साम, दाम, दण्ड, भेद—ये चारों नीतियां अपनाई जा रही हैं। कहने को तो नेता लोग (चुनाव के समय) कहते हैं—मैं अपने आंसुओं से इस धरती को सींचता रहूंगा, किंतु हकीकत यह है कि अवसरवादिता की नाट्यशाला में जितने अभिनय एक राजनेता कर सकता है शायद कुशल अभिनेता भी उतना अभिनय नहीं कर सकता।

सब अपनी डफली अपना राग आलाप रहे हैं। राष्ट्र की चिंता किसे है? सब मौके का फायदा उठाना चाहते हैं, क्योंकि न जाने कब किस दुर्वासा का शाप उन्हें अभिशप्त कर दे और कब हरिश्चंद्र की तरह उन्हें सर्वात्मना आत्मसमर्पण कर देना पड़े।

आज राजनीतिज्ञों के पास नैतिकता की आंख नहीं है। मियां की दौड़ मसजिद तक को चरितार्थ करने वाले इन नेताओं का संबंध केवल अपने बॉस या पार्टी तक सीमित है। पार्टी उनके लिए मंदिर है, सबकुछ है, जब तक उनका स्वार्थ सधता है। वरना पार्टी बदलते एक क्षण भी नहीं लगाते। उस समय देश-सेवा का व्रत तो स्मृति पटल से ही ओझल हो जाता है। जहां राष्ट्र के कर्णधारों की ऐसी देशभक्ति है वहां विवश होकर कहना पड़ता है—सवेरा अभी तक हुआ नहीं!

सामाजिक परिवेश—अंधविश्वासों, कुरीतियों और रूढ़ियों के शिकंजे में जकड़े जनमानस में युग हवा का प्रवेश असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। शहर की बातें हम एक बार छोड़ दें किंतु भारतीय आत्मा तो गांवों में निवास करती है। दकियानूसी विचारों और जर्जरित परंपराओं की चद्दर में लिपटी जिंदगियों के पास आगे-पीछे सोचने का कोई मुद्दा ही नहीं है। बस, वे जी रहे हैं, यही बहुत है। ऐसा लगता है कि जागृति या नया मोड़ जैसी सशक्त आवाज की प्रतिध्वनि भी वहां अभी तक गूंज नहीं सकी है।

आचार्यश्री तुलसी का प्रवास उदयपुर में था। हम सात समणीवृंद उस समय पदयात्रा में साथ थीं। अचानक गोगुन्दावालों के अनुरोध पर हम वहां गईं। कार्यक्रम उल्लसित वातावरण में संपन्न हुआ, किंतु प्रातःकाल की स्थिति देखकर हम असमंजस में पड़ गईं।

एक बहन के पति का स्वर्गवास हो गया था। उसके परिवार वालों का भरसक प्रयत्न था कि आचार्यप्रवर सन्निकट विराज रहे हैं, हम उनकी पर्युपासना में पहुंचे और कुछ धार्मिक संबल प्राप्त करें। उन्होंने हमें वस्तुस्थिति से अवगत करवाया और बहन को समझाने के लिए कहा। हम वहां गईं। भरा-पूरा शिक्षित व संपन्न परिवार था। सब वहां एकत्रित थे। हमने उनसे बात की। बहन को दर्शन करने के लिए प्रेरित किया, पर वह बहन हमसे सहमत नहीं हो पाई। बाहर जाना तो दूर, वह टस से मस नहीं होना चाहती थी। हमने कारण पूछा तो उसने कहा—समणीजी! दर्शन तो हर वर्ष होते रहेंगे, किंतु ऐसा मौका (पति की मृत्यु का) जिंदगी में बार-बार नहीं आता। उसका प्रत्युत्तर सुन हम स्तंभित थीं और तत्काल मानस सागर में ये शब्द-लहर लहराई—सवेरा अभी तक हुआ नहीं।

पारिवारिक उलझनें—संयुक्त परिवार प्रथा प्रायः अपना समापन समारोह मना चुकी है। संदेह, अविश्वास, ईर्ष्या के कारण पारिवारिक सदस्य एक-दूसरे से भयभीत हैं। प्रेम, सौहार्द, शालीनता और विनम्रता के संस्कार छीजते चले जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त बूढ़े और युवाओं के सोच में या कहना चाहिए प्राचीन और अर्वाचीन विचारों में छिड़े संघर्ष के कारण पारिवारिक स्थितियां दयनीय और शोचनीय बनती जा रही हैं।

बूढ़े की आंखों में कल की कला है, पर आज की शक्ति का अनुभव उसे नहीं हो पा रहा है और युवा देखता है केवल आज की ऊंची अट्टालिका को, पर उसकी नींव रखने में कल ने कितना श्रम किया था, उस ओर उसकी नजर भी नहीं उठती। फलतः विचार और क्रियान्वयन के लिए कोई अवकाश नहीं रहता। ऐसी स्थिति में अस्तित्व, कर्तृत्व व व्यक्तित्व उभर नहीं पाते। उनकी चेतना तिरोहित हो जाती है। किसी आने वाले तूफान की आशंका से ही आस्थाएं चरमरा जाती हैं। विश्वास डोल जाता है व व्यवस्थाएं गड़बड़ा जाती हैं। फलतः समाज व राष्ट्र को सक्षम नेतृत्व नहीं मिल पाता। परिवार जिसे शिशु की प्रथम पाठशाला कहा जाता है वही उसके लिए समरभूमि बन जाता है। ऐसी स्थिति को देखकर अनायास ये स्वर निःसृत होते हैं—सवेरा अभी तक हुआ नहीं।

धार्मिक वातावरण—भारत एक धर्मनिरपेक्ष देश है। यद्यपि धर्मनिरपेक्ष शब्द आज संशोधन चाहता है, क्योंकि भारत में अनेक धर्म-प्रचलित हैं, इसलिए इसे धर्म-निरपेक्ष नहीं, संप्रदाय निरपेक्ष कहना अधिक औचित्यपूर्ण होगा। किंतु यहां कि धार्मिक अंधश्रद्धा को देखकर तो हर चिंतनशील चक्कर खा जाता है।

जहां एक व्यक्ति चोरी करता है, जुआ खेलता है, मांस खाता है, मदिरा पीता है, वेश्यागमन करता है, फिर भी अपने को धार्मिक कहकर गौरव का अनुभव करता है? महज इसलिए कि वह अछूत का स्पर्श नहीं करता, उसके हाथ का पानी नहीं पीता।

धर्म तो आत्मसृजन की प्रेरणा है। जिसकी निष्पत्ति है पवित्र आचार, उच्च विचार और शुद्ध व्यवहार। जहां धर्म के नाम पर रक्त की होलियां खेली जाएं। भाई-भाई की जान का दुश्मन बन जाए। धर्म के नाम पर दंभ और अहंकार को बल मिले। अनीतियां अजगर की भांति मुंह फैलाएं और जो धर्म राष्ट्रीय एकता को खतरे में डाल दे, ऐसे धर्म को तो हर चिंतनशील व्यक्ति दूर से ही नमस्कार कहकर इतिश्री कर लेना चाहता है। धर्म जो जीवन का परिष्कार करने वाला है, जीवन में आमूलचूल परिवर्तन करने की जिसमें क्षमता है, किंतु तथाकथित धार्मिकों के आचरण और व्यवहार को देख ऐसे धर्म के प्रति जनमानस की आस्था नहीं रह पाती और उनका चिंतन इस रूप में प्रस्फुटित होता है कि ऐसे धार्मिक से हम अधार्मिक ही अच्छे हैं। ऐसे शब्द जब सुनने को मिलते हैं तब यह कथ्य सत्य प्रतीत होने लगता है—सवेरा अभी तक हुआ नहीं!

इन सब स्थितियों का अवलोकन करने के पश्चात् लगता है कि विदेशी दासता का जुआ भारतीय कंधों से अवश्य उतर गया है, किंतु चिरपोषित कुसंस्कारों का वैचारिक दुष्प्रभाव आज भी कायम हैं, इसलिए हम सही रूप में आजादी के मूल्य को नहीं समझ पाए हैं।

यह सत्य है कि प्रकृति पर जब विकृति की परतें जमने लगती हैं तब उसके परिष्कार की अपेक्षा महसूस होती है। आज स्थिति ऐसी ही है। सहज ही प्रश्न होगा की फिर हमारे लिए करणीय क्या है?

यदि आकाश के तारों को धरती का फूल बनाना है तो हमारे लिए करणीय मात्र यही है कि हम अपने पूर्वजों की अनुभूतियों तथा भविष्य के ख्याली-पुलावों में न बहकर अपने कर्तव्य की तूलिका से वर्तमान के चित्र में रंग भरें। जो सुविधावाद की शय्या पर लेटने से नहीं, शहीद भगत सिंह और चंद्रशेखर जैसे वीरों की तरह खून-पसीने से इस धरती को सींचने से होगा। आदर्शों के आईने में झांकने से नहीं, गांधीजी की तरह तदनुरूप आचरण में लाने से होगा। वैमनस्य, कदाग्रह से नहीं, शांति और सुलहगिरी से होगा। अर्थहीन रूढ़-परंपराओं का भार ढोने से नहीं, सामूहिक क्रांति की चिनगारियों को प्रज्वलित करने से होगा। विदेशी ऋण के भार से दबकर नहीं, स्वयं को संपन्न और आत्मनिर्भर बनाने से होगा। केवल फाइलों में योजनाओं को कैद करने से नहीं, उनको क्रियान्विति देने से होगा।

आइए, इन पुनीत घड़ियों में हम सत्संकल्पों से अपने आपको भावित करें। नवनिर्माण की पुकार के साथ आगे कदम बढ़ाएं और देश की संस्कृति व एकता को अक्षुण्ण रखने में अपना योगदान दें। ❐

साधन और साध्य

माचिस से बाती जली,
हम कहते हैं दीया जला।
क्योंकि, सच यही था,
दीये में ही बाती का
अस्तित्व था मिला।।

लेखनी पड़ी थी,
इन्सान ने उठाई
खेंची ढेढ़ी-मेढ़ी लकीरें,
लकीरें शब्दों में समा गई।
उन्हें यादगार बना गई।।

गाड़ी खड़ी थी,
चाबी लगी थी,
फिर भी नहीं चली।
मानव ने चाबी घुमाई,
स्टेयरिंग संभाली,
वह दौड़ चली।।

साधन हमेशा
साध्य को दिखाता है,
उसका गुण
साध्य से उभर आता है।

साधन के बिना
साध्य होता अधूरा है,
जब दोनों मिल जाते हैं,
तब जटिल से जटिल
लक्ष्य हो जाता पूरा है।।

जिंदगी वर्तमान है

जिंदगी वर्तमान है,
अतीत है यादें।
भविष्य के सपनों में
सदा उभरते हैं,
वर्तमान के इरादे।।

इरादे मजबूत हों,
संकल्प शक्ति बढ़ेगी।
उसकी सोच,
उसकी प्रक्रिया,
बुलंदी पर चढ़ेगी।।

वर्तमान के चरखे पर,
भविष्य उतरा तो।
अतीत बन जाएगा,
वर्तमान हमेशा
वर्तमान ही कहलाएगा।।

आज की पहचान ही
सच्ची पहचान है,
अतीत गया,
भविष्य आएगा,
जिससे सब अनजान है।

वर्तमान की सूई रुक गई
तो जिंदगी बिखर गई,
सिमटी अतीत की यादें,
अब चुप्पी साधे खड़े थे,
भविष्य के सब वादे।।

कितना विचित्र है स्वार्थ का तंत्र

मुनि जयंत कुमार

महावीर ने धर्म के दो रूपों का निरूपण किया—अनगार धर्म और आगार धर्म। अनगार धर्म की साधना करनेवाले अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह—इन पांच महाव्रतों का पालन करते हैं। आगार धर्म के साधक उक्त पांच व्रतों का पालन एक सीमा तक करते हैं। इस दृष्टि से उनके व्रत अणुव्रत कहलाते हैं। अपरिग्रह की साधना में अमीरी-गरीबी की कोई समस्या नहीं है। यह समस्या वहां पैदा होती है, जहां अर्थ के अर्जन, संग्रह और भोग की लालसा रहती है। गृहस्थ परिग्रह से विरत नहीं होता। उसे परिग्रहजनित समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

अर्थ के बिना संसार का काम नहीं चलता। समाज में रहने वाला कोई भी व्यक्ति अपरिग्रही नहीं बन सकता। वह भीख मांगकर भी अपना काम नहीं चला सकता। एक भिक्षु भिक्षाजीवी होता है, पर कोई गृहस्थ भीख मांगता है तो समाज में उसकी बदनामी होती है। इसलिए वह अर्थार्जन से उदासीन नहीं हो सकता। अर्जन और भोग पर प्रतिबंध लगाना धर्म का काम नहीं है। धर्म का काम है इन पर अंकुश रखना। महावीर ने कहा—आकांक्षाओं को सीमित करो, साधनशुद्धि पर ध्यान दो और उपभोग का संयम करो। यह शांति और सुख का निरापद मार्ग है।

सहयोग होता है स्वार्थ के धरातल पर

गरीबी और अमीरी के बारे में निरपेक्ष दृष्टि से कुछ भी कहना संभव नहीं है, क्योंकि आदमी गरीब या अमीर वैभव के आधार पर नहीं, विचारों के आधार पर बनता है। ऐसी स्थिति में गरीबी मिटाने का अभियान कौन चला सकता है? कैसे चला सकता है? कुछ लोग कहते हैं कि गरीबों का सहयोग करना चाहिए। सहयोग की बात सुनने या पढ़ने में बहुत रुचिकर लगती है, पर कौन किसका सहयोग करता है? इस संसार में सर्वोपरि तत्त्व है स्वार्थ। बिना स्वार्थ पुत्र अपने पिता को नहीं पूछता और पिता अपने पुत्र का सहयोग नहीं करता। भाई-भाई हो, सास-बहू हो, पति-पत्नी हो या मैत्री का संबंध हो। जब तक एक-दूसरे से स्वार्थ सिद्ध होता है, संबंधों में मधुरता बनी रहती है। स्वार्थ पर थोड़ी-सी आंच आते ही संबंधों का प्रासाद भरभरा कर गिर पड़ता है। एक भाई के घर में नदी के पानी

की तरह अर्थ का प्रवाह बहता हो और दूसरे भाई को भरपेट रोटी भी नसीब न हो, तो भी सहयोग का हाथ नहीं बढ़ता। फिर बिना जान-पहचान निःस्वार्थभाव से सहयोग करनेवाला कौन होगा?

देश में दुष्काल पड़ता है। पशुधन का क्षय होने लगता है। दूध, दही, घी की कमी होने लगती है, तब लोगों की आंखें खुलती हैं। पशुओं को बचाने के लिए कुछ कदम उठाए जाते हैं। क्यों? उसमें भी स्वार्थ की गंध है। पशुओं के बिना दूध, घी, दही कहां से आएगा? वह सुरक्षा पशुओं की नहीं, अपने स्वार्थ की है। अन्यथा भूख से तड़पते कितने मनुष्य प्रतिदिन मरते हैं, उनकी किसी को चिंता नहीं होती? क्योंकि उनसे कोई स्वार्थ नहीं सधता। कितना विचित्र है यह स्वार्थ का तंत्र! इससे मुक्ति कैसे होगी?

संसार में श्रेष्ठ व्यक्तियों की कमी नहीं है। उच्चस्तर के कुछ लोग ऐसे हो सकते हैं, जो स्वार्थ से ऊपर उठ गए हैं। जिनके सामने अपने-पराए जैसी कोई भेदरेखा नहीं है, जिनके अंतःकरण में परार्थ और परमार्थ की भावना हिलोरें लेती हैं। जो नाम और प्रतिष्ठा की आकांक्षा से मुक्त हैं, पर ऐसे लोगों की संख्या ही कितनी है? आटे में नमक जितने भी नहीं हैं ऐसे व्यक्ति। यह प्रतिस्रोत का मार्ग है। इस पर चलना बहुत कठिन है। यह आदर्श की बात है। किसी में आदर्श उपस्थित करने की क्षमता न हो तो उसकी हत्या तो नहीं होनी चाहिए। सहयोग की बात नहीं होती है तो किसी को दीन-हीन तो नहीं बनाना चाहिए। अतिरिक्त वैभव का प्रदर्शन कर किसी को मानसिक रूप से प्रताड़ित तो नहीं करना चाहिए।

साधर्मिक वात्सल्य का प्रयोग

भगवान महावीर व्यक्तिगत साधना में जितना विश्वास करते थे, सामूहिक साधना पर भी उतना ही बल देते थे। उन्होंने दर्शन के आठ आचार बतलाए। उनमें आठवां आचार है साधर्मिक वात्सल्य। व्यक्ति की आस्था को धर्म में स्थिर करना और जिन लोगों में धर्म के प्रति श्रद्धा नहीं है, जो लोग जन्मना धार्मिक नहीं हैं, उन्हें कर्मणा धार्मिक बनाने का प्रयत्न करना साधर्मिक वात्सल्य का आध्यात्मिक पक्ष है। इसका सामाजिक पक्ष है—साधर्मिक लोगों के साथ भाईचारे का व्यवहार करना और उनके सुख-दुःख में संभागी बनना। यह मानवीय संवेदना की अभिव्यक्ति है। जहां संवेदना का स्रोत सूख जाता है, व्यक्ति दूसरे के सुख-दुःख से प्रभावित नहीं हो पाता।

प्राचीनकाल में दक्षिण भारत के जैन समाज ने सामाजिक स्तर पर साधर्मिक वात्सल्य का प्रयोग किया। शिक्षा, चिकित्सा, जीविका और आश्वासन के रूप में वहां चार प्रकार के दान की परंपरा विकसित हुई—ज्ञानदान, औषधिदान, अन्नदान और अभयदान। समाज में कोई व्यक्ति निरक्षर, बीमार, भूखा और भयभीत न रहे, इस दृष्टि से साधर्मिक वात्सल्य का उपक्रम चला। इससे हजारों परिवारों को सहज रूप में भगवान महावीर की शरण उपलब्ध हो गई। जैन संस्कृति प्रसरणशील बनी। लोकजीवन पर जैनधर्म का प्रभाव बढ़ा।

कालांतर में दक्षिण भारत में भी साधर्मिक वात्सल्य की परंपरा शिथिल होने लगी और धीरे-धीरे क्षीण हो गई। अब तो ऐसा लगता है कि साधर्मिक वात्सल्य के उक्त चारों बिंदुओं को ईसाई लोगों ने अपना लिया। भारत में या पूरे विश्व में ईसाई धर्म के विस्तार को देखते हुए कहा जा सकता है कि वे अपने लक्ष्य के प्रति सजग हैं। भय और प्रलोभन का मार्ग धर्म का मार्ग नहीं है, किंतु भाईचारा, सौहार्द या साधर्मिक वात्सल्य का रास्ता सब प्रकार से प्रशस्त रास्ता है। इसमें किसी को दीन-हीन नहीं समझा जाता। गरीबी और बेरोजगारी की समस्या से आक्रांत लोग हीन भावना के शिकार हो जाते हैं। उनके सुख-दुःख में संभागिता या उनके साथ भाईचारे के व्यवहार से एक सीमा तक इस समस्या को सुलझाया जा सकता है। ❑

स्वतंत्रता वरदान बने, अभिशाप नहीं

मुनि चैतन्य कुमार

संसार में प्रत्येक प्राणी स्वतंत्र रहना पसंद करता है, क्योंकि स्वतंत्रता में जो सुखानुभूति होती है, वह परतंत्रता में कदापि संभव नहीं। कहा भी है—पराधीन सपनेहुं सुख नाहीं।

मनुष्य तो एक चिंतनशील-विवेकशील प्राणी कहलाता है, किंतु पशु-पक्षी जगत भी परतंत्रता के बंधन में रहना नहीं चाहते। वे भी तो बंधन से मुक्त रहने-होने का प्रयास करते हैं। अनंत आकाश की ऊंचाइयों में उड़नेवाले परींदे भी स्वतंत्र रहकर विचरण करने में ही सुखाभास का अनुभव करते हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य तो कभी परतंत्र रहकर जीने की कल्पना ही नहीं कर सकता।

विश्वमंच पर जब हम देखते हैं तो कोई भी राष्ट्र किसी अन्य राष्ट्र के अधीन रहना नहीं चाहता। भारत जैसा महान लोकतांत्रिक राष्ट्र जब अंग्रेजों की अधीनता से मुक्त बना तो उसने सुख की राहत महसूस की, किंतु गांधी के सपनों का भारत क्या वास्तव में स्वतंत्र है? स्वतंत्र शब्द बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। इसके अर्थ की मीमांसा करें तो पाएंगे कि कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र है ही नहीं। स्वतंत्र अर्थात् स्व का अपना तंत्र, शासन। जिसका स्वयं पर अपना नियंत्रण है वह स्वतंत्र हो सकता है। केवल अपनी मनमानी करना स्वतंत्रता नहीं, स्वच्छंदता हो सकती है। आज हर व्यक्ति स्वतंत्र नहीं, स्वच्छंद है। केवल अपने मन की इच्छा के अनुसार करना चाहता है। छोटे-छोटे बच्चे भी यही चाहते हैं कि मैं कुछ भी करूं, कोई मुझे रोके नहीं, टोके नहीं। कोई उन्हें रोकता है, टोकता है तो उन्हें अच्छा नहीं लगता बल्कि उनकी भावनाएं भी आहत होती हैं।

जब भारत देश आजाद हुआ तो सबने सोचा होगा कि अब हम स्वतंत्र हैं, आजाद हैं। स्वतंत्रता हमारा अधिकार है। हम कुछ भी कर सकते हैं। लेकिन सबको यह भी याद रखना चाहिए कि स्वतंत्रता भी नियमों से आबद्ध है। हमें नियमों का, कानून का पालन करना ही होगा। व्यवहार की शिक्षा भी हमें मर्यादित और अनुशासित होकर चलना सिखाती है। यद्यपि सरकार के स्तर पर कानून थोपे हुए होते हैं, वे डंडे के बल पर चलने के लिए प्रेरित करते हैं। वहीं धर्म और अध्यात्म के क्षेत्र में नियमों की पालना स्वेच्छा से होती है। शांत जीवन जीने के लिए व्यक्ति स्वयं अपनी सीमाओं का निर्धारण करे तथा साथ ही पारिवारिक, सामाजिक, संघीय तथा राष्ट्रीय मर्यादाओं की पालना में सजगता रखे।

तेरापंथ धर्मसंघ एक आचार, एक विचार तथा एक आचार्य केंद्रित धर्मसंघ है। इसके प्रत्येक सदस्य को स्वेच्छा से मर्यादा का पालन करना होता है। प्रत्येक साधु-साध्वी को समान अधिकार है। अपने निजी विचारों को स्वतंत्र रूप से आचार्य के समक्ष प्रस्तुत करने का अधिकार है। उसकी बात को आचार्य बड़े ध्यान से सुनते हैं। उचित समझने पर स्वीकार भी

की जाती है, किंतु स्वीकृत करना अनिवार्य नहीं होता। वह परिवार, समाज व राष्ट्र सदैव विकसित राष्ट्र की गणना में आ सकता है जिसके प्रत्येक सदस्य को अपने मुखिया को बात कहने की स्वतंत्रता हो। व्यक्तिगत जीवन में अकेला व्यक्ति कुछ भी करे, समझ में आ सकता है, किंतु सामूहिक जीवन में पूर्ण स्वतंत्र नहीं रह सकता। सामूहिक जीवन में अपनी सोच, अपना चिंतन और अपने विचार इतने बड़े हों कि कहीं कोई टकराव की स्थिति को जन्म लेने का अवसर ही नहीं मिले। वह स्वतंत्रता वरदान बन सकती है, जिसमें सबके साथ तालमेल बिठाकर चलने की मनोवृत्ति हो। अन्यथा वह स्वतंत्रता अभिशाप बन जाएगी, जहां संकीर्णता संपृक्त विचारों को लिए हुए हो। सोच हमेशा सकारात्मक और विधेयात्मक हो, नकारात्मक नहीं हो। जहां नकारात्मक सोच है वह स्वयं अपने लिए तथा सामूहिक जीवन में अशांति और तनाव पैदा करने वाली होगी। अतः गुरुदेव तुलसी के शब्दों में 'निज पर शासन फिर अनुशासन' को पुष्ट करते जाएंगे तो निस्संदेह हम स्वतंत्रता की अनुभूति करते हुए सदा विकास के मार्ग पर बढ़ते हुए तरक्की करते रहेंगे तथा जीवन में सदैव सहजता-सद्भाव व सौहार्दपूर्ण व्यवहार से सफलता का वरण कर सकेंगे। ❑

पुरुषार्थ

1. यह काम अशक्य है, ऐसा सोचकर किसी भी अच्छे काम से पीछे न हटो। कारण पुरुषार्थ अर्थात् उद्योग प्रत्येक काम में सिद्धि देने की शक्ति रखता है।
2. किसी काम को अधूरा छोड़ने से सावधान रहो। कारण अधूरा काम करने वालों की जगत में कोई चाह नहीं करता।
3. किसी के भी कष्ट के समय उससे दूर न रहने में ही मनुष्य का बड़प्पन है और उसको प्राप्त करने के लिए सभी मनुष्यों को हार्दिक सेवा रूप निधि (धरोहर) रखनी पड़ती है।
4. पुरुषार्थहीन की उदारता नपुंसक की तलवार के समान है। कारण वह अधिक समय तक टिक नहीं सकती।
5. जो सुख की चाह न कर कार्य को चाहता है वह मित्रों का ऐसा आधार-स्तंभ है जो उनके दुःख के आंसुओं को पोंछेगा।
6. उद्योगशीलता ही वैभव की माता है, पर आलस्य दारिद्र्य और दुर्बलता का जनक है।
7. कंगाली का घर निरुद्यमता है। लेकिन जो आलस्य के फेर में नहीं पड़ता उसके पश्चिम में लक्ष्मी का नित्य निवास है।
8. यदि मनुष्य कदाचित् वैभवहीन हो जाए तो कोई लज्जा की बात नहीं है, परंतु जानबूझकर मनुष्य श्रम से मुख मोड़े, यह बड़ी ही लज्जा की बात है।
9. भाग्य उलटा हो तो भी उद्योग श्रम का फल दिए बिना नहीं रहता।
10. जो भाग्यचक्र के भरोसे न रहकर लगातार पुरुषार्थ किए जाता है वह विपरीत भाग्य के रहने पर भी उस पर विजय प्राप्त करता है। ❑

स्वतंत्रता दिवस मनाएं नए संकल्प के साथ

प्रोफेसर आनंदप्रकाश त्रिपाठी

पन्द्रह अगस्त 1947 का दिन भारतीय इतिहास के पन्नों में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। लंबी दासता के बाद अनगिनत क्रांतिकारियों के त्याग और बलिदान से स्वतंत्रता के विहान ने भारत भूमि पर दस्तक दी थी। एक तरफ जहां चंद्रशेखर आजाद, असफाक उल्ला खां, वीर कुंवर सिंह, भगतसिंह आदि हंसते-हंसते आजादी के परवाने हो गए, तो दूसरी तरफ गोपालकृष्ण गोखले, बाल गंगाधर तिलक, लाला लाजपतराय आदि ने अदम्य जीवटता के साथ अंग्रेजों से लोहा लिया था। 'आजादी हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है, हम इसे लेकर रहेंगे।' तिलक के ये शब्द अंग्रेजों को चुनौती देते थे। साइमन कमीशन के बहिष्कार के समय लाला लाजपतराय पर अंग्रेजों के जुल्मोसितम और लाठीचार्ज के बाद भी उनके स्वर मुखरित हुए—'मेरे शरीर पर पड़ी एक-एक लाठी की चोट ब्रिटिश साम्राज्य के लिए कफन साबित होगी।' कितना अदम्य उत्साह था, कितनी जीवटता थी और मातृभूमि के प्रति सच्चा प्रेम था कि मरते समय भी वे ब्रिटिश साम्राज्य के पतन की बात सोच रहे थे।

गोखले ने तो लंबे समय तक आजादी के संग्राम के नेतृत्व के लिए महात्मा गांधी के रूप में एक सुयोग्य शिष्य दिया, जिन्होंने सत्य और अहिंसा के रास्ते पर चलकर असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन आदि के माध्यम से अंग्रेजों को भारत छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया। गांधीजी ने पूरे विश्व को दिखा दिया कि अहिंसा की ताकत क्या होती है। लार्ड माउण्टबेटन ने स्वयं गांधीजी की अहिंसा शक्ति की तारीफ करते हुए कहा था कि हमारे पचास हजार हथियारों से युक्त सिपाही एक तरफ और गांधी की अहिंसा एक तरफ। अंततः गांधी की अहिंसा की जीत हुई।

हम आजाद हो गए, हमारे क्रांतिकारियों ने आजाद भारत के लिए जो सुनहरा स्वप्न देखा था, क्या वह स्वप्न साकार हुआ है? यह एक अहम प्रश्न है। क्या क्रांतिपुरोधाओं ने भ्रष्ट आजाद भारत की कल्पना की थी? क्या असुरक्षित महिलाओं वाले भारत की इच्छा की थी? क्या आत्महत्या कर मौत को गले लगा रहे किसानों वाले भारत की कल्पना की थी? क्या हिंसक आक्रोश को व्यक्त करने वाले लोगों की कल्पना की थी? शायद नहीं। गांधीजी ने तो अपने असहयोग आंदोलन को चौरीचोरा कांड के कारण हिंसक होने पर इसलिए वापस ले लिया था कि हमें हिंसा के द्वारा प्राप्त आजादी नहीं चाहिए। यदि राष्ट्रपिता बापू ने देश की आजादी के लिए अपने सफलतम आंदोलन में हिंसा को स्थान नहीं दिया तो स्वतंत्र भारत में हिंसा क्यों?

क्या आज सत्ताधीश स्वतंत्रता आंदोलन के इतिहास से अनभिज्ञ हैं? क्या बापू की इच्छा का आदर करने का दायित्व उनका नहीं है? देश सेवा की शपथ लेनेवाले ये नेता भ्रष्टाचार को बढ़ावा देते हैं। क्या गांधीजी ने आजादी के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर इसलिए किया था कि हम भ्रष्टतम दस देशों में अपना स्थान सुरक्षित कराएं? हर पंद्रह अगस्त को हम तिरंगा झंडा फहराते हैं, क्रांतिकारियों को याद करते हैं। लंबे-चौड़े भाषण सुन लेते हैं और स्वतंत्रता दिवस को मनाने की औपचारिकता पूरी कर अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। क्या यही हमारा कर्तव्य है? क्या आजाद देश के नागरिकों का यही दायित्व है? क्यों नहीं अपने पूर्वजों से सबक लेकर हम अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हैं?

यदि भगतसिंह, चंद्रशेखर आजाद आदि की तरह अपनी कुर्बानी नहीं दे सकते और गांधी की तरह सर्वस्व त्यागकर राष्ट्रहित का कार्य नहीं कर सकते, तो लाल बहादुर शास्त्री की तरह अपने परिवार के भरण पोषण के

लिए निष्ठा और ईमानदारी से अपने कर्तव्य का तो निर्वाह कर ही सकते हैं। प्रत्येक पंद्रह अगस्त को हमें कुछ संकल्प के साथ अपने दायित्व का निर्वहन करना होगा।

प्रत्येक भारतवासी को भारतीय कहलाने में गर्व की अनुभूति होनी चाहिए, किंतु दुर्भाग्य से प्रांत, जिले, तहसील, गांव और परिवार तक अपने आपको सीमित करके हम विकृत मानसिकता का ही परिचय देते हैं। हमें यह सोचना चाहिए कि यदि भारत माता नहीं रहेगी तो कौन-से प्रांत, जिले या परिवार का अस्तित्व रह पाएगा? असली आजादी तो उस दिन होगी जब देश का प्रत्येक नागरिक धर्म, वर्ग, नस्ल, एवं जाति के चक्कर से ऊपर उठकर अपने नाम के साथ उपनाम भारतीय लगाएगा।

कुटिल राजनीतिज्ञ वोटों के लिए जनता को धर्म, जाति, संप्रदाय में बांटकर अपने स्वार्थ की पूर्ति करते हैं। ऐसे नेताओं का सामूहिक बहिष्कार जनता द्वारा किया जाना चाहिए जो देशवासियों को भारतीयता से अलग करते हों। अतः हम पहले भारतीय हैं। फिर और कुछ हैं, यह अहसास हमें होना चाहिए और यही हमारा प्रमुख दायित्व है।

आचार्य तुलसी ने स्वतंत्र भारत में नैतिक आदमी की कल्पना की थी। उनका मानना था कि आजाद भारत चाहे कितना भी समृद्ध क्यों न हो जाए, यदि नैतिकता नहीं होगी तो गुलामी को रोका नहीं जा सकता।

जब तक भारतवासी आम्भी, जयचंद, मीरजाफर बनते रहेंगे तब तक गुलामी को रोका नहीं जा सकता। अच्छे और नैतिक आदमी के लिए उन्होंने अणुव्रत आंदोलन का शंखनाद सन् 1949 में किया था। उनका मानना था कि असली आजादी तभी संभव होगी जब देश के लोग नैतिक होंगे। उन्होंने यह भी कहा था कि मुझे 'जैन' नहीं, मैन चाहिए। एक जैनाचार्य यदि अच्छे आदमी की बात करता है तो इसका मतलब उसके लिए देशहित सर्वोपरि है। 'संयममय जीवन और सुधरे व्यक्ति समाज व्यक्ति से राष्ट्र स्वयं सुधरेगा।'—आचार्यश्री तुलसी के इन उद्घोषों को सत्ताधीश राष्ट्र का सूत्र वाक्य बनाकर और तदनुरूप यदि कार्यक्रमों को क्रियान्विति करते तो शायद आज देश भ्रष्टतम दस देशों में न होकर अच्छे दस राष्ट्रों में गिना जाता। अतः प्रत्येक व्यक्ति का यह दायित्व है कि वह अच्छा आदमी बनकर राष्ट्र की सेवा करे।

अन्ना हजारे आज भी हमारे आदर्श हैं, जिनकी एक आवाज पर दिल्ली के जंतर-मंतर पर लाखों की भीड़ जुट जाती है। सिविल सोसायटी के लोगों ने देश को जगाने का एक प्रयत्न किया है। जनलोकपाल बिल के माध्यम से भ्रष्टाचार को उखाड़ फेंकने की एक जीवंत कल्पना की है, किंतु भ्रष्ट नेता इस बिल को अपने लिए अभिशाप समझकर इसे किसी भी हालत में बनने देना नहीं चाहते। वे जन समर्थन के दबाव में लोकपाल बिल चाहते जरूर हैं किंतु ऐसा बिल चाहते हैं ताकि वे पाप भी कर सकें और उनका कोई बाल भी बांका न कर सके।

देश का प्रत्येक व्यक्ति अच्छाई चाहता है। कोई भी बुराई नहीं चाहता, किंतु विडंबना यह है कि हर व्यक्ति अच्छाई दूसरों से चाहता है। जब स्वयं अच्छा बनने की बात आती है तो पीछे हट जाता है। हम यह तो चाहते हैं कि लोग सत्य बोलें, अहिंसा के मार्ग पर चलें, किंतु जब बात अपने पर आती है तो पीछे हट जाते हैं। यही प्रत्येक समस्या का कारण है। अतः हमारा दायित्व है कि हम अच्छी बात अपने और अपने घर से शुरू करें। संभवतः ऐसा करने में कोई बाधा नहीं है, यह हमारे अधिकार क्षेत्र के अंतर्गत है। धीरे-धीरे हमारे कदम आगे बढ़ सकेंगे। पुनः आचार्य तुलसी याद आते हैं, जिन्होंने यह कहा था कि– 'हम सुधरेंगे युग सुधरेगा।' अतः हम अपने सुधरने की बात सोचें तो धीरे-धीरे युग में बदलाव आएगा।

इस बार स्वतंत्रता दिवस मनाते हुए जहां तिरंगा झण्डा फहराएं, क्रांतिकारियों को याद करें, वहीं यह संकल्प भी लें कि हम भारतीय हैं, भारतीय रहेंगे और अपने आचार व्यवहार से देश का मान-सम्मान बढ़ाएंगे। एक सभ्य नागरिक एवं सुसंस्कृत देशभक्त के रूप में स्वयं जीवनयापन करेंगे और दूसरों को भी ऐसे ही जीवन-यापन के लिए प्रेरित करते रहेंगे। पारदर्शिता और जवाबदेही हमारे जीवन का आधार होगी। बस, इसी संकल्प की क्रियान्विति के साथ हम स्वतंत्रता दिवस का स्वागत करें। ❑

घड़ी का चेन

मुनि वत्सराज

आज ईसा की जयंती का दिन है। प्रत्येक प्रेमी अपनी प्रेमिका को कुछ उपहार देकर आज के दिन एक नवीन तृप्ति पाता है। डेमा आज इसी चिंता में विलीन है कि वह अपने प्रिय के चरणों में क्या चढ़ाए? पैसे का अभाव उसकी आत्मा को बुरी तरह कचोट रहा था। उसकी प्यासी आंखें अनंत आकाश में चक्कर काट रही हैं, पर उन्हें कहीं आधार नहीं मिलता। जहां गई वहां शून्यता के दर्शन हुए।

उसके घूमते हुए नयन सहसा एक स्फटिककाय दर्पण पर पड़े। अपने प्रतिबिंब को निहार कर वह पुलक उठी। केशों की कमनीय कालिमा से आशा की एक उज्ज्वल किरण निकल पड़ी। मानो कुछ अज्ञात राशि को पाकर वह सहर्ष घर से बाजार की ओर चल पड़ी।

न्यूयार्क की एक दुकान में केशों के कलामय-निर्माण होते थे। डेमा बस, कुछ क्षणों में वहां पहुंच गई। कलाकार! क्या मेरे ये केश तुम्हारे लिए कुछ उपयोगी हो सकेंगे? डेमा ने कुछ गंभीर स्वर से कहा। केश परीक्षक की दृष्टि रत्न परीक्षक की तरह अपने आप में प्रवीण थी। उसने इन अलौकिक केशों का मूल्यांकन क्षण भर में कर लिया और सहर्ष अपनी स्वीकृति दे दी।

सत्तर सिक्कों में डेमा ने अपने चिर-लालित-पालित केशों को बेच दिया। मस्तक अब बिलकुल खाली है, पर उसका अपना हृदय भरा-भरा सा लग रहा है। वह उन सिक्कों से अपने प्रिय को प्रेमोपहार देने के लिए एक घड़ी का चेन खरीद कर घर पर लौटी।

'अरे! यह कौन? तुम! डेमे!! ऐसे कैसे? एक गहरे आश्चर्य और दुःख के साथ जिम ने पूछा। डेमा ने हंसते हुए कहा—कुछ नहीं, फिर आ जाएंगे। तुम आज के दिन शोक मत करो। आओ, आज का मंगल पर्व मनाएं। पति के गहरे आग्रह के बाद पत्नी को अपनी घटना के द्वार खोलने पड़े। एक उष्ण निःश्वास डालते हुए जिम ने कहा—डेमा! न तो तुम प्रेम को समझती हो, न प्रेमी के हृदय को। क्या तुम नहीं जानती कि हृदय-हृदय से जुड़ता है, भौतिक पदार्थों से नहीं। तूने मेरी आज की आशा पर तुषारापात कर दिया है डेमा! बस इससे अधिक मैं तुझे कुछ नहीं कहूंगा।

इस उल्लासमय दिवस को अनुताप से दुःखमय न बनाओ प्रिये! तुम्हारी घड़ी कहां है? देखो यह सुंदर चेन तुम्हारी घड़ी में पिरोने पर कैसा सुंदर लगेगा। क्या तुम भी मेरे लिए कुछ उपहार लाए हो? मैं उसे निहारने को उत्सुक हूं प्रिये! डेमा ने हंसते हुए कहा। जिम के हृदय से एक दर्द भरी आह निकली और मंथर स्वर से बोला—उपहार हम दोनों लाए, पर उपहार हमारे लिए आनंद का विषय नहीं रहा। डेमा! वह दुःख का विषय बन गया है। कैसे?—डेमा ने पूछा। जिम ने दो कंगन डेमा के हाथ में रखते हुए कहा—ऐसे! मैं अपनी घड़ी को बेचकर कंगन लाया हूं और तुम केशों को बेचकर घड़ी का चेन। केशों के बिना कंगन बेकार से लगते हैं और घड़ी के बिना चेन। चेन और कंगन जो हमारे आनंद के विषय थे, अब तो वे घोरतम अवसाद के ही हेतु हैं। अध्यात्मवादियों का यह कथन आज हमारे जीवन में चरितार्थ हो रहा है—'सव्वे कामा दुहावहा।' ❑

नया प्रस्थान

नई दिशा की खोज जरूरी है। अर्थ और पदार्थ की दिशा में चलने वाले मनुष्य ने आसक्ति का जाल बुना है। मकड़ी अपने ही जाल में फंस गई है।

नई दिशा है चैतन्य की दिशा। उस दिशा में चलनेवाला मनुष्य सहज ही अनासक्ति का वरण कर लेता है।

जीवन-यात्रा में पदार्थ को छोड़ा नहीं जा सकता। जिसे छोड़ा जा सकता है, वह है आसक्ति। उससे मुक्ति पाने के लिए जरूरी है नया प्रस्थान, आत्मानुभूति की दिशा में चरणविन्यास।

जीवन के प्रश्न

सब लोग जीते हैं पर इन प्रश्नों पर बहुत कम लोग विचार करते हैं—क्यों जीना है? कैसे जीना है? क्या इन प्रश्नों पर विमर्श किए बिना अच्छा जीवन जीया जा सकता है? यदि जीया जा सकता है तो चिंतन करने की आवश्यकता नहीं है। चिंतन की अपेक्षा अचिंतन की आवश्यकता अधिक है।

यदि इन प्रश्नों पर विचार किए बिना अच्छा जीवन जीया जा सके तो उन पर चिंतन करना जरूरी है।

भीतर की ओर

आचार्य महाप्रज्ञ

• जीवन के स्तर

जीवन अनेक स्तरों पर जीया जाता है। उनमें पहला स्तर शारीरिक है। उस स्तर पर जीवन की अभिव्यक्ति है। इस स्तर पर जीवन की अभिव्यक्ति इंद्रियों के माध्यम से होती है। बाह्य जगत से संपर्क स्थापित करने का माध्यम है इंद्रियां। इनमें दो इंद्रियां प्रमुख हैं—चक्षु और श्रोत्र। रूप और शब्द बाह्य जगत के प्रमुख अंग हैं। चक्षु और श्रोत्र के द्वारा उनसे हमारा संपर्क स्थापित होता है। व्यक्ति अपनी वैयक्तिकता में रहता है, फिर शब्द और रूप के माध्यम से सामुदायिकता से जुड़ जाता है।

• जीवन के स्तर

जीवन का दूसरा स्तर मानसिक है। मन का कार्यक्षेत्र है इंद्रियों द्वारा गृहीत विषयों का विश्लेषण, निर्धारण, कल्पना, योजना, चिंतन, मनन आदि। यह स्तर विकास की आधारभूमि है।

पशु-पक्षी जगत में कुछ जीव केवल इंद्रिय संपन्न होते हैं और कुछ जीव मन से भी संपन्न होते हैं।

राज्य-राष्ट्र की दंडनीति और अहिंसा

डॉ. लक्ष्मीनारायण मित्तल

राजनीति का एक नाम दंडनीति भी है। दंड में शक्ति का प्राधान्य है। शक्ति अलगाव पर टिकी रहती है। नीति उपाय है, धर्म उपेय है। प्राणी मात्र को मित्र मानना और किसी के प्रति वैर भाव न रखना अहिंसा है। अनेक मनीषियों ने अहिंसा को आत्मानुभूति, कषाय का उपशमन, संवेदनशीलता, करुणा, मैत्री और संबंधों में मधुरता को माना है।

गांधी मानते थे कि अहिंसा से बड़ा सत्य है। अहिंसा और सत्य देश, काल, व्यक्ति, वर्ग, जाति और संप्रदाय से बद्ध नहीं है। वह स्थानातीत और कालातीत है।

महाभारत में एक प्रसंग में कहा गया है—'अभयदानं सर्वदानेभ्यम् उत्तमम्' अहिंसा केवल शाब्दिक अर्थ में किसी प्राणी की हत्या ही नहीं है, यह वैरत्याग भी है। किसी के प्रति भी हिंसा की भावना न रखना। इसे ही जैन आचार्यों ने अवैर कहा है। व्यास अपने भाष्य में कहते हैं—

सर्वथा, सर्वदा सर्वभूतानाम् अनभिद्रोहः। किसी भी जीव जगत, वनस्पति जगत और जड़ जगत के प्रति वैर या विरोध न रखना। आज जड़-जगत का जो अंधाधुंध दोहन हो रहा है, वह पर्यावरण के लिए तो घातक है ही, परंतु प्रकटतः हिंसा है—वनस्पति जीवन-जगत और जड़-जगत के प्रति हिंसा रखना।

हिंदू शास्त्रों में हिंसा चार कारणों से निषिद्ध हैं—

(1) सभी दृश्यमान जगत उसी ब्रह्म से उत्पन्न है।

(2) सभी जीव-अजीव इस ब्रह्माण्ड के साधिकार निवासी है।

(3) हिंसा कर्ता के मन में नफरत और क्रोध भरती है।

(4) यह हमारी आत्मचेतना को भ्रष्ट करती है।

इनमें पहले दो कारण कारक—जिसके प्रति कर्म किया जाए से संबंधित हैं और अंतिम दो क़र्ता से।

हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि लोक-संग्रह के लिए किसी को दंड देना हिंसा नहीं है वह वध हो सकता है (यदि मृत्युदंड दिया जाए तो) शासन को वीतरागी होना चाहिए। न तो शुभराग, न ही अशुभराग।

अहिंसा हमारे शास्त्रों में अनुशासन है, यह नियमों के पालन का एक पक्ष है। भारत के प्राचीन राजनीति के शास्त्रज्ञों ने कर्ता और उसके कर्म के बीच विभाजक रेखा खींची है। सजा कर्म को मिलनी चाहिए न कि कर्ता को। आधुनिक दंड विधान में कर्ता और उसके कर्म के बीच का भेद मिट गया है। हर देश-समाज की एक जीवन-दृष्टि होती है। हमारा नीतिशास्त्र, आपसी व्यवहार और प्रकृति से रिश्ता इसी जीवन दृष्टि से निकलता है। आज भारत में विचारों का जो संकट है, उसका कारण यह है कि हमने आधुनिक पाश्चात्य जीवन का अनुकरण करना सीख लिया है। यह नकल भी पूरी तरह हम नहीं कर पाते। जिन विचारों से आज हम भारत को चला रहे हैं, वह उस समाज की जीवन-दृष्टि से निकली समझ है, जिसकी हम नकल कर रहे हैं। अपनी नजर से स्वयं को देखने का स्वभाव हम खो चुके हैं।

आज जिन व्यवस्थाओं में हम जी रहे हैं, वे आयातित हैं। हमारी अपनी समझ हमारी जड़ों, हमारी सभ्यतागत मान्यताओं आदि से उसका कुछ भी लेना-देना नहीं है।

जब समझ भटकती है तो समाज टूटता है। दूसरे को धक्का देकर आगे बढ़ने की भावना प्रतिस्पर्धा को जन्म देती है। प्रतिस्पर्धा हिंसा है और .वह सत्य के विपरीत है।

26 अक्टूबर 1920 को बॉम्बे क्रॉनिकल में लिखते हुए गांधी जी कहते हैं—

About the word illegal .... A cyclist without a lamp is fetch a doctor acts contrary to law but does not engage in an illegal activity. He voluntarily bays the fine and thus honours the law. To disregard a tyrannical administrative order may be contrary to law, but it is not in my opinion an illegal activity.

अपनी पहली गिरफ्तारी पर 18 अप्रैल 1917 को मोतीहारी कोर्ट में गांधी जी ने कहा था (मूल अंग्रेजी में)—

The only safe and honourable course for a self respecting man is...... to submit without protest to the penalty of disobedience. I have ventured to make this statement not to show that I have disregarded the order served upon me, not for want of respect for lawful ...., but in obedience to the helper law of our being the voice of conscience.

—ईमानदारी यदि व्यक्ति की अपेक्षा है, तो क्या यह राष्ट्र-राज्य की दंडनीति का हिस्सा नहीं होना चाहिए? यह जानते हुए भी कि अफजल गुरु को फांसी की सूचना की स्पीडपोस्ट चिट्ठी फांसी के बाद पहुंचेगी और सतर्कता बरतते हुए पूरे राज्य में इन्टरनेट आदि सेवाओं पर पाबंदी दंडनीति में दुराव-छिपाव और शंकित मन को प्रकट करती है। यही बात संजयदत्त को 30 दिन की और मुहलत देने के फैसले से संबंधित है। उससे एक दिन पहले 72 वर्षीया जेबुनिसा की अर्जी खारिज हो चुकी थी, जो कैंसर से पीड़ित थी। यह अलग बात है कि संजयदत्त के फैसले के बाद जब उसने व अन्यों ने फिर से अपील की तो उन्हें भी चेतावनी सहित 30 दिन की और मुहलत मिल गई। काश्मीर में अफजल गुरु की फांसी के बाद और पंजाब में भुल्लर की फांसी की सजा की घोषणा के बाद जैसा जनसमर्थन इन दोनों मुद्दों पर राज्य में उठ रहा है, वह हमारी दंडनीति के नकारात्मक पहलू को दर्शाता है।

यदि हम उपाय और उपेय को एक मानें तो हमारी दंडनीति भी धर्म और अहिंसा पर आधारित होगी।

मनुस्मृति में दंड को धर्म का सहोदर माना गया है—दंड धर्म विदुर्बुधाः। राजा को चाहिए कि वह अपने राष्ट्र में न्याय बरते परंतु शत्रु के साथ दंड, साम, दाम और भेद भी।

प्रश्न है कि क्या राष्ट्र-राज्य विशुद्ध अहिंसक प्रवृत्ति से चलाया जा सकता है? इसका उत्तर है—हां! महाभारत में इसके लिए एक शब्द आया है—आनृशंस्यं। समष्टि में धर्म की आत्मा है—अवध और प्रभव। अवध अहिंसा का ही रूप है और प्रभव सबका अभ्युदय यानी गांधी का सर्वोदय। आनृशंस्य में करुणा और मैत्री दोनों निहित है।

'आत्मवत सर्वभूतेषु' केवल व्यष्टि धर्म नहीं है, यह समष्टि का भी धर्म है। इसी से राष्ट्र-राज्य को भी गीता के अनुसार—'न हंति' (न मारता है) 'न हन्यते' (न मरता है) और 'न हान्यति' (न मरवाता है) पर विचार करना चाहिए। ❐

धन-संपत्ति और मकान जायदाद का विभाजन होना कोई विशेष बात नहीं है। साझे के कारोबार में मुनाफा और सामुदायिक खेती में फसलों का विभाजन भी होता आया है। चोरी और डकैती के माल का विभाजन भी गैंग के सदस्य करते पाए जाते हैं। यह भी सुनने में आता है कि प्रयत्नपूर्वक प्राप्त की हुई घूस का विभाजन भी समझदार लोग समझौता करके कर लेते हैं। देश का विभाजन होने के बाद लोकतंत्र की स्थापना उत्साहपूर्वक हुई थी, तो मतदाताओं का विभाजन अनेकानेक राजनीतिक पार्टियों में हो गया– जाति, धर्म, संप्रदाय, मत-मतांतर, विभिन्न भाषाओं और भौगोलिक आधार पर (यथा—पहाड़ी, मैदानी, पूर्वी-पश्चिमी आदि), सामाजिक विभाजन की चर्चा भी साहित्य और इतिहास में की जाती है, किंतु मैंने जब माता-पिता के विभाजन की बात सुनी तो मैं स्तंभित रह गया। क्या मां-बाप को भी संतान अपने निहित स्वार्थ और आर्थिक लाभ के लिए विभाजित कर अलग-अलग रहने को विवश कर सकती हैं?

विभाजन किसका करें

* * * * *

श्याम श्रोत्रिय

नाम था उनका भी शिवचंद्र शर्मा। उत्तरप्रदेश रोडवेज में स्टोरकीपर के पद पर रहते हुए उन्होंने अवकाश ग्रहण किया था। वे सीधे-सादे, किंतु चतुर व्यक्ति थे। अपने समाज में उनको विशेष आदर सम्मान मिलता था। वे मितव्ययी तो थे ही, सादा जीवन, उच्च विचार की प्रतिमूर्ति भी थे। शर्माजी के चार पुत्र थे और दो पुत्रियां। पुत्रियां तो सामान्य शिक्षा पा सकीं, पर पुत्रों को उन्होंने अच्छी शिक्षा दिलवाई और योग्य बनाया। सबसे बड़ा पुत्र दूर-संचार विभाग में उच्च अधिकारी बना। दूसरा पुत्र भी दूरसंचार विभाग में अधिकारी बन गया। तीसरे और चौथे क्रम के पुत्र दिल्ली व उसके आसपास के कस्बों में व्यापारिक प्रतिष्ठानों में नियोजित हो गए। शर्माजी के सेवानिवृत्त होने से पूर्व ही सभी पुत्र व पुत्रियों के विवाह संपन्न हो गए थे। सभी अपनी-अपनी गृहस्थी के साथ आराम से रहने लगे थे।

शर्माजी ने अपने सेवा स्थान आगरा में ही यमुना पार की बस्ती में अपना छोटा-सा मकान बना लिया था। अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों से मुक्त होकर शर्मा जी अपनी धर्मपत्नी के साथ चैन से रह रहे थे। सेवा निवृत्ति के बाद उन्हें पेंशन मिलती थी और बैंक से स्थाई जमा पूंजी का थोड़ा ब्याज भी मिल जाता था। कुल मिलाकर पति-पत्नी के जीवन की गाड़ी आराम से चल रही थी।

शर्माजी और उनकी पत्नी यों तो स्वस्थ थे, पर वृद्धावस्था की दुर्बलता, कम सुनना, कम दीखना, चलने-फिरने में असमर्थता, खांसी-बुखार, जोड़ों में दर्द और पाचन क्रिया की क्षीणता ने उन्हें विवश कर दिया कि वे अपने बेटों के पास रहें। वृद्धावस्था के कारण पति-पत्नी दोनों सिर्फ दलिया ही खाते थे–दोनों टाइम सिर्फ दलिया। वे पीपा भर के दलिया पिसवा लेते और सुविधापूर्वक उसका प्रयोग करते थे।

शर्माजी को शुगर की शिकायत भी थी, जिसके कारण उन्हें काफी सावधानी बरतनी पड़ती थी। उनकी पत्नी को सुनाई कम पड़ने लगा था, जिसके कारण बुड्ढ़े-बुढ़िया के बीच आपसी वार्तालाप में भी व्यवधान आने लगा था।

बुढ़ापा भी अपने आप में एक अभिशाप है। व्यक्ति कितना ही स्वस्थ क्यों न हो, उसका शरीर तो क्षीण होता ही है। कर्मेंद्रियां और ज्ञानेंद्रियां धीरे-धीरे

शरीर का साथ छोड़ने लगती हैं। शरीर किसी सहारे की आवश्यकता अनुभव करने लगता है। जीवन निरंतर एकाकी, आत्मोन्मुख और निष्क्रिय होने लगता है। धन्य हैं वे बूढ़े लोग, जो अपने आत्मबल और शरीर साधना के बल पर उदासीन जीवन जीने से बचे रहते हैं।

शर्माजी को किसी आत्मीयजन ने सलाह दी कि उन दोनों को अब अपने बेटों के साथ रहना चाहिए। प्रश्न यह था कि उनके चारों बेटे अलग-अलग स्थानों पर सेवारत थे। किसी एक के पास मृत्युपर्यंत रहना संभव न था। शर्माजी ने सोचा, क्यों न आगरा वाले मकान को बेच दिया जाए। उससे जो रकम मिलेगी उसके लालच में कोई न कोई बेटा उन दोनों बुड्ढ़े-बुढ़िया को अपने साथ अवश्य रख लेगा, परंतु ऐसा नहीं हुआ। मकान बेचकर शर्माजी को बुढ़ापे में सिर छिपाने के आश्रय से भी हाथ धोना पड़ा। चारों पुत्र-वधुओं ने साफ-साफ कह दिया कि वे हमेशा-हमेशा के लिए उन्हें (दोनों को) अपने साथ नहीं रख सकतीं। थोड़े बहुत दिनों की बात हो तो वे आकर साथ रह सकते हैं। शर्माजी की दशा 'जल बिन मछली' जैसी हो गई थी। एक तो बुढ़ापे की मार और उस पर चारों पुत्रों और उनकी वधुओं की दुत्कार। शर्माजी को तो बेटे अपने साथ रखने को सहमत भी थे, पर अपनी मां को—बुढ़िया को साथ रखने को कोई बहू राजी नहीं हुई। उनके कम दीखने और कम सुनने के कारण उन्हें वे अपनी गृहस्थी पर बोझ समझ रही थीं। शर्माजी के पोते-पोतियां (नाती-नातिनें) भी अम्मा (दादी) को साथ रखने को सहमत नहीं हुए। ऐसे मां-बाप, जिनके चार-चार समृद्धिशाली बेटे हों, अपने लिए आश्रयस्थल खोजने में असहाय अनुभव कर रहे थे। सबसे बड़े बेटे ने तो स्पष्ट रूप से मना कर दिया कि वह मां-बाप में से किसी को भी अपने साथ नहीं रख सकता। उसके बच्चे मेडिकल कॉलेज में पढ़ रहे हैं और पत्नी शिक्षिका हैं। सभी अपने-अपने काम से सारे दिन घर से बाहर रहते हैं। अतः उनकी व्यवस्था संभव नहीं है। दूसरे क्रम के बेटे का क्वार्टर तीसरी मंजिल पर था। जहां बुड्ढ़े-बुढ़िया का सीढ़ियों पर चढ़ना-उतरना बहुत ही कष्टदायक था। अतः वे वहां स्वयं ही नहीं रहना चाहते थे। तीसरे बेटे ने अपने घर में जगह की कमी बताकर मना कर दिया, तो चौथे बेटे ने स्पष्ट मना कर दिया कि मां व बाप दोनों में से किसी एक को वह अपने साथ रख सकता है, दोनों को नहीं। समस्या जटिल बन गई थी।

भारतीय समाज में यह पाया जाता है कि बेटियों का अपने माता-पिता के प्रति बेटों की तुलना में लगाव अधिक होता है। जब बूढ़े मां-बाप की सेवा करने से बेटे कतराने लगते हैं तो बेटियां (चाहे वे पराई हो जाती हैं) अपने असहाय मां-बाप की सेवा करने को तत्पर हो जाती हैं, यहां तक कि अपने गृहजनों को भी वे अपने साथ ले लेती हैं।

यही हुआ। जब शर्माजी की बड़ी बेटी को पता चला कि अम्मा (मां) को अपने साथ रखने को चारों में से कोई भाई तैयार नहीं है तो वह अपने ससुराल से आई और मां को अपने साथ ले गईं। शर्माजी को चौथे क्रम का बेटा, जो दिल्ली के आसपास के कस्बे में रहता था अपने साथ ले गया। मां और बाप का विभाजन हो गया।

इस विभाजन के बाद शर्माजी अधिक समय तक जीवित नहीं रहे। वृद्धावस्था के असहाय जीवन में पति और पत्नी दोनों को एक-दूसरे के सहारे की सर्वाधिक आवश्यकता होती है। यह ऐसी अवस्था होती है जब शरीर के साथ मानसिक असहायता की पूर्ति पति-पत्नी ही कर सकते हैं। ऐसी घनघोर असहाय स्थिति में शर्माजी को अपनी जीवनसंगिनी से अलग रहने को विवश होना पड़ा—वे टूट गए थे।

शर्माजी की मृत्यु के बाद जब उनके सभी बेटे और बेटियां एकत्र हुए तो उनकी मां (श्रीमती शर्मा) ने रोते-रोते सबके सामने कहा था—'हम दोनों कबहू एक दूजे से अलग नांहि रहे। जा बुढ़ापे में बच्चान ने हमें अलग-अलग करि दीन्हौं, जाही ते वे जल्दी चले गए।' [हम दोनों एक-दूसरे से कभी अलग नहीं रहे। इस बुढ़ापे में बच्चों ने हमें विभाजित कर दिया, इसीलिए उनका (शर्माजी का) निधन शीघ्र हो गया।] ❑

कार्यकर्ता के पांच गुण

मुनि मोहनलालजी (शार्दूल)

कार्यकर्ता अंतर्मुखी हो : अंतर्मुखता व्यक्ति का पहला गुण है। जो कार्य करना चाहते हैं उसके लिए आवश्यक है कि उसकी तह को पकड़ा जाए। बिना गहरी दृष्टि के कोई भी ठोस कार्य नहीं हो सकता। जो बाह्य पर रीझते हैं उनके द्वारा कोई मौलिक कार्य संपादन की संभावना नहीं रखी जा सकती। जो करते बहुत कम हैं और जताते बहुत अधिक हैं, वे असल में कार्यकर्ता नहीं, वे केवल नाम के भूखे हैं और छिछले स्वभाव के आदमी हैं। उनकी निष्ठा किसी कार्य पर नहीं टिक सकती।

काम तो वे ही व्यक्ति कर सकते हैं जो अंतर्मुखी हैं और जिनको काम से प्रेम है। अंतर्मुखी कोई प्रतिदान नहीं चाहते, वे तो कार्य करना अपना कर्तव्य समझते हैं। उन्हें वैयक्तिक लाभ से या जनता की नजरों पर चढ़ने से लगाव नहीं रहता। जो इन प्रलोभनों में गर्क हो जाते हैं, उनसे तो हो-हल्ले की और झूठा नाम कमाने की ही अपेक्षा रखी जा सकती है, काम की नहीं।

असली कार्यकर्ता कभी यह नहीं सोचते कि मेरे कार्य का मूल्यांकन हो रहा है या नहीं, क्योंकि इस चिंतन में बहने वाला कार्यकर्ता बहिर्मुखी हो जाएगा और लोकैषणा की ही पल-पल चिंता रखेगा, काम की नहीं और अपने ध्येय से पिछड़ जाएगा। मेरे काम को लोग देख रहे हैं या नहीं, इस वृत्ति से वह कामचोर भी बन जाएगा, क्योंकि उसे काम से मतलब नहीं, नाम से मतलब है। इसका तात्पर्य यह है कि इस प्रकार वह यथार्थ में कोई कार्यकर्ता न होकर नौकर ही रह जाएगा। अतः आवश्यक है कि कार्यकर्ता अंतर्मुखी होकर व कार्यनिष्ठ होकर ही काम करे, प्रशंसा की और प्रतिदान की अपेक्षा न रखे।

कार्यकर्ता धैर्यवान हो : कार्यकर्ता का दूसरा गुण धैर्य है। कोई भी काम मिनटों में नहीं होता। धैर्य रखकर उसको लंबी अवधि तक करना पड़ता है, असफलता के अनेक आघात भी लगते हैं, पर उनको सहते हुए, आशा रखते हुए जारी रखना पड़ता है। कार्य संपन्न होने की प्रतीक्षा की घड़ियों में यदि कार्यकर्ता उतावला होकर कार्य छोड़े तो ऐसा मानना चाहिए कि वह कार्य करने की पद्धति से अनभिज्ञ है। काम करने में बड़े धैर्य की आवश्यकता होती है। पहले ही फावड़े के प्रहार से कुआं नहीं खुद जाता और न कुठार के प्रथम ही प्रहार से वृक्ष कट जाता है। उन दोनों ही स्थलों पर अनेक बार प्रहार करना पड़ता है। तभी ये काम होते हैं। बोते ही कोई वृक्ष नहीं फलता। लंबे समय तक तो उसको केवल विश्वास रखकर सींचना पड़ता है और उसकी देख-रेख करनी पड़ती है। तभी वह कालांतर में फलदायी होता है। किसी काम को करते ही उससे फल पाने की इच्छा बेकार है। जो जितना ठोस एवं सुंदर काम करना चाहता है उसे उतने ही गहरे एवं लंबे धैर्य की आवश्यकता होती है। धीरज के वृक्ष पर सार्थकता का फल लगता है। यह सोलह आने सत्य है। भले ही कोई भी कार्यकर्ता इसे आजमा कर देख ले। कार्यारंभ होते ही सफलता के विषय में उत्सुक होना और उसका उसी वक्त प्रत्यक्ष नतीजा न देखकर अधीर हो उठना उत्तम कार्यकर्ता के लक्षण नहीं है। अनेक बाधाओं, अनेक असफलताओं, अनेक विरोधों में भी जो अपने काम पर डटा रहता है, डिगता नहीं, किंचित भी हिलता नहीं, हताश नहीं होता, वही आदमी काम कर सकता है।

कार्यकर्ता आचार में दृढ़ हो : कार्यकर्ता का तीसरा गुण आचार की दृढ़ता है। जब तक कोई स्वयं

ठीक नहीं होता तब तक किसी दूसरे को सुधारा नहीं जा सकता। इसलिए स्वयं का चरित्र अत्यंत विकसित होना चाहिए। चरित्रशीलता में आशंका नहीं होनी चाहिए। जनता कार्यकर्ता का चेहरा और भाषण नहीं देखती, वह कार्यकर्ता का व्यवहार और बर्ताव देखती है। उसके कथन से नहीं जीवन से शिक्षा लेना चाहती है। काम का प्रमुख संबंध श्रद्धा से रहता है। कार्यकर्ता यदि अपनी श्रद्धा को नहीं रख पाता तो वह जनता को नयां मोड़ देने में समर्थ नहीं हो सकता।

कार्यकर्ता यदि स्वयं आचार शैथिल्य से ग्रस्त होता है तो उसके लिए जनता में श्रद्धा के लिए अवकाश नहीं रह जाता। स्खलना करके जो कार्यकर्ता अपने जीवन के कुछ अंशों को रिक्त कर देता है वहां अश्रद्धा पैठ जाती है और फिर उसका कोई असर नहीं रह जाता। कार्यकर्ता का छोटा-सा दोष भी पहले और बड़े आकार में दीखता है। अतः उसे इस विषय में सावधानी बरतनी चाहिए।

कार्यकर्ता में आचरण-सजगता बहुत अपेक्षित है। वह यदि पूर्ण सतर्क नहीं रहे, तो उसका जीवन किसी भी समय आक्रांत हो सकता है, दबोचा जा सकता है। कार्यकर्ता को बहुत से व्यक्तियों के संपर्क में आना पड़ता है। अनेक प्रकार के विचारों से समन्वय करना पड़ता है। समय-समय पर किसी से सहयोग लेना भी आवश्यक होता है। इसलिए उसे अपने आप पर बहुत नियंत्रण रखना चाहिए और चरित्र की प्रतिष्ठा अक्षुण्ण रखनी चाहिए। आचरण में शिथिलता उसको स्वयं को भी कचोटती रहती है, कोई काम वह निःशंक और मस्तक उन्नत रख के नहीं कर सकता। स्वर्णपात्र में लोहे की मेख के समान यह बात बहुत अखरने वाली होती है। कार्यकर्ता के विचार, संकल्प, भाषण या दूसरी-दूसरी अन्य कोई योग्यता का उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना कि उसके चरित्र का पड़ता है। इसलिए जरूरत है कि कार्यकर्ता चरित्र का धनी हो।

कार्यकर्ता सुविधा-असुविधा से ऊपर हो :

कार्यकर्ता की चौथी विशेषता है कि वह सुविधा असुविधा से ऊपर उठा हो। अधिक सुविधा देखने वाला कोई भी आदमी कार्य नहीं कर सकता। कार्य का बहुत-सा आधार व्यक्ति का मनोबल ही रहता है, परिस्थितियां नहीं। कार्यकर्ता यदि सब जगह स्थितियों की अपेक्षा रखे तो वह कार्य कर ही नहीं सकता। उसे अनेक जगह जाना पड़ता है, अनेक छोटे-बड़े स्थलों में ठहरना पड़ता है। कहीं बहुत सुंदर सहयोग प्राप्त होता है और कहीं उलटा विरोध होता है। कहीं सामग्री का प्राचुर्य होता है और कहीं बहुत कम साधन मिलते हैं, किंतु इन सबसे कार्यकर्ता का उत्साह मंद नहीं होना चाहिए। अपनी प्रतिभा से परिस्थितियों का सुंदर निर्माण करना चाहिए और साधन जुटाने में सावधान रहना चाहिए, पर इन सबकी इतनी अपेक्षा नहीं रखनी चाहिए कि इनकी अप्राप्ति में कार्य ही ठप हो जाए। सुविधा और असुविधा पर इतना निर्भर नहीं होना चाहिए कि इन पर ही सारा कार्यभार आ जाए। लोगों से काम लेने की योग्यता कार्यकर्ता में होनी चाहिए, पर यह नहीं कि उसके अभाव में काम चले ही नहीं। अधिक भरोसा कार्यकर्ता को अपने पर ही रखना चाहिए। अपनी शक्ति भर जो काम कर सकता है वह सच्चा कार्यकर्ता है। वही दूसरों को भी कार्य निष्ठा की ओर खींचने में समर्थ होता है।

कार्यकर्ता में अनासक्ति का भाव हो :

कार्यकर्ता का पांचवां गुण अनासक्ति है। उसे किसी चीज में आसक्ति-भाव नहीं रखना चाहिए, क्योंकि आसक्ति कार्याकार्य का विवेक नहीं रहने देती। जो कार्यकर्ता किसी चीज में आसक्त हो जाता है वह फिर कोई उपयोगी काम का भी मूल्यांकन नहीं कर सकता। वह फिर आवश्यकता पूर्ति की क्षुद्र वस्तुओं में ही अपने चिंतन और समय को खपा देता है और अपनी अभिरुचि को कुण्ठित कर लेता है। खाने का प्रयोजन तो आखिर उदर व्यथा का शमन ही है। वस्त्र पहनने का मतलब तन की लज्जा, रक्षा ही तो है। ये काम साधारण और विशिष्ट दोनों ही चीजों से साधे जा सकते हैं, फिर विशिष्ट के लिए ही आग्रह क्यों? कार्यकर्ता की दृष्टि में सामान्य और विशेष का भेद ज्ञान तक ही सीमित रहना चाहिए, व्यवहार में आना चाहिए। साधारण लोगों की तरह वह भी इन बातों में फंसने लगे तो उसका महत्त्व ही क्या रह जाएगा? ❐

मन को कैसे मोड़ा जाए?

मंत्री मुनि सुमेरमलजी (लाडनूं)

आए दिन यह प्रश्न हमारे सामने रहता है, कि मन को कैसे मोड़ा जाए। यह एक समस्या है। इसे बिना सुलझाए बुरी प्रवृत्तियों से मन को रोकने में हम सफल नहीं हो सकते। इसे सुलझाने के लिए सबसे पहले हमें मन के स्वरूप का तथा उसकी प्रक्रिया का भली-भांति ज्ञान करना होगा।

मन का स्वरूप

जैन आगमों में मन के दो भेद किए गए हैं—द्रव्य और भाव मन। चिंतन करने में सहायक बनने वाले पुद्‌गल स्कंधों को द्रव्य मन कहते हैं। ये चतुस्पर्शी पुद्‌गल हैं। मनःपर्याप्ति के द्वारा आत्मा इसे ग्रहण करती है तथा इसकी सहायता से चिंतन, मनन आदि क्रियाएं करने में समर्थ बनती है। इंद्रियों की भांति मन भी भौतिक तत्त्वों की सहायता से क्रियात्मक बनता है। जिस तत्त्व की सहायता ली जाती है, उसे कहा गया है द्रव्य मन।

भाव मन—मनःपर्याप्ति से मनोवर्गणा के पुद्‌गल स्कंध को ग्रहण करके इच्छा, आकांक्षा, चिंतन, मनन आदि से होने वाली विभिन्न मानसिक क्रियाओं को भाव मन कहा जाता है। इसे सर्वार्थग्राही माना गया है। सब विषयों में मन की गति है। यह इंद्रियों की भांति केवल एक विषय तक ही सीमित नहीं रहता। इंद्रियों की तरह परसहायापेक्ष तथा क्षायोपशमिक होने के कारण कहीं-कहीं इसे इंद्रिय भी कहा गया है। लब्धिस्वरूप मन तो समनस्क प्राणियों के सदा रहता है, किंतु योगात्मक मन तो, जब चिंतन आदि क्रियाएं चलती हैं, तभी होता है।

यांत्रिक उपमा

मन का आगमिक स्वरूप समझ लेने के बाद इसका काल्पनिक स्वरूप भी समझना चाहिए।

मन को हम मोटर की उपमा से उपमित कर सकते हैं। मोटर में जैसे परमोपयोगी तीन तत्त्व होते हैं—इंजन, तेल, संचालक। इन तीनों मे इंजन मोटर का प्राण है। इसके बिना मोटर केवल इस्पात का ढांचा भर है। गमनागमन की शक्ति इंजन में है। जितनी शक्ति वाला इंजन है, मोटर उतनी ही शीघ्र तथा दीर्घ काल तक चल सकती है। तेल इंजन को सक्रिय बनाने वाला तत्त्व है, इंजन जब चलता है, तब उसे कुछ न कुछ खाद्य चाहिए ही, चाहे वह पेट्रोल, मिट्टी का तेल या कोयला हो। संचालक इन दोनों का सदुपयोग करने वाला तत्त्व है। इसके सहारे मोटर गंतव्य पथ पर सकुशल दौड़ती रहती है। इन तीनों तत्त्वों के सम्मिलित होने से ही मोटर सक्रिय बन सकती है। अन्यथा आकार मात्र है।

इसी प्रकार मन को भी हम मोटर समझें, इसके भी मुख्य तीन तत्त्व हैं—(1) जन्म से प्राप्त चिंतन की क्षायोपशमिक शक्ति (2) द्रव्य मन (3) निर्दिष्ट कार्य में लगानेवाली आत्मा।

चिंतन करने का क्षयोपशम भी सबके समान नहीं होता। अतः चिंतन करने की शक्ति में विभिन्नता रहती है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति की मनन शक्ति अलग-अलग प्रकार की होती है। किन्हीं भी दो व्यक्तियों की चिंतन क्षमता एक-सी नहीं होती।

द्रव्य मन की शक्ति खाद्य का काम देती है, मनः-पर्याप्ति जितनी मनोवर्गणा को ग्रहण करेगी, उतनी ही मनोशक्ति सक्रिय बनेगी।

आत्मा इन सब का संचालक है। ऐसे तो मन स्वयं आत्मा का गुण है, फिर भी किसी अपेक्षा से गुण और गुणी दोनों अलग-अलग हैं, अतः यहां पर भी अलग-

अलग रूप में बताया गया है। तीसरा तत्त्व इन दोनों तत्त्वों का नियंता है, प्रयोक्ता है। इसके बिना तो द्रव्य मन का अस्तित्व भी इसके साथ जुड़ा हुआ है। अतः इन सबका मूल रहा आत्मा। आत्मा के साथ ही ये पनपने वाले तत्त्व हैं। इन तीनों का सम्मिलित रूप ही मनोयोग है। इसमें यदि एक तत्त्व भी न्यून हो तो मनोयोग नहीं बनता। इसके लिए इन तीनों तत्त्वों की अपेक्षित आवश्यकता रहती ही है।

कार्य क्षेत्र

मानसिक यंत्र को समझ लेने के बाद हमें यह चुनाव करना पड़ता है कि हमें इसको किस क्षेत्र में लगाना है। इसकी गति तो सर्वत्र है। जहां चाहे वहां आप इसे ले जा सकते हैं, अतः यहां व्यक्ति को लक्ष्यबद्ध होना पड़ता है, हमें अमुक क्षेत्र में मन को दौड़ाना पड़ता है। लक्ष्यबद्ध होने के बाद यदि क्षेत्र में सतत प्रयत्न जारी रखा जाए तो हम मन को केंद्रीभूत कर सकते हैं। एक व्यक्ति कवि बनने की धुन में कविता लिखना प्रारंभ करता है, दूसरा व्यक्ति लेखक बनने की धुन में निबंध लिखना प्रारंभ करता है। दोनों अपने-अपने लक्ष्य में अभ्यास से सफल हो ही जाते हैं। इतना अवश्य है कि दीर्घ समय तक यदि मन को एक विषय में लगा दिया जाए, तो फिर दूसरे विषय में उसकी प्रगति शुद्ध हो ही जाती है। जैसे—जीवन भर कविता लिखने वालों को निबंध लिखना पहाड़-सा लगता है, और निबंध लिखने वालों के लिए कविता लिखना मानो महाभारत ही सामने आया हो। ऐसा होना ही चाहिए, मन का केंद्रीकरण तभी हो सकता है। अतः जिस क्षेत्र में मन को लगाना है, उसे लक्ष्यबद्धता के साथ करना चाहिए।

प्रारंभ

मन केंद्रीभूत सतत अभ्यास से होता है, बिना अभ्यास के मन अधिक समय तक एक विषय पर नहीं टिक सकता। दूसरा विषय सामने आते ही उसमें चला जाता है और बिना लगाम के घोड़े की भांति निर्लक्ष्य इतस्ततः भटकता रहता है। यह स्थिति व्यक्ति को किसी भी कार्य में सफल नहीं होने देती। अस्थिर मन ध्यान के लिए सदा बाधक बना रहता है। ध्यान के अभ्यासियों के लिए यह सदा समस्या रहती है कि मन को कैसे केंद्रित किया जाए। इस समस्या को हल करने के तीन उपाय हैं—(1) दृढ़ लक्ष्य (2) सतत अभ्यास (3) विषय का ज्ञान। दृढ़ लक्ष्य के बिना हम मन को केंद्रित नहीं कर सकते। यह हवा की भांति भटकता रहेगा। हवा को यदि एक निर्धारित रूप से ही पार करना है, तो उस रास्ते के सिवाय शेष सभी रास्तों को बंद करना पड़ेगा, अन्यथा हवा बिखर जाएगी। इसी प्रकार मन को जिस विषय पर लगाना है, उसके प्रति दृढ़ लक्ष्य होना पड़ेगा। लक्ष्यबद्ध होने के बाद उस विषय में मानसिक गति के अभ्यास की आवश्यकता है। गति कैसे हो? बहुधा देखा जाता है कि किसी एक विषय में मन को गतिमान किया, दो-चार क्षणों में ही उसकी गति बंद हो जाएगी। मन दूसरी ओर दौड़ जाएगा। इससे ध्यानार्थी निराश हो जाता है। एक प्रकार की झुंझलाहट पैदा हो जाती है। फलतः बहुत सारे इस उपक्रम को छोड़ ही देते हैं। गति अवरुद्ध होने के दो ही कारण हैं, एक तो तद्विषयक ज्ञान का अभाव, दूसरा अभ्यास की कमी। जिस विषय में मन को केंद्रित करना है, उस विषय का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए अन्यथा गति का अवरुद्ध होना अवश्यंभावी है। बिना पटरी के रेल नहीं चलती, ज्ञान तो पटरी का काम करता है अतः न्यूनाधिक मात्रा में इसका होना आवश्यक है।

ज्ञान होने के बाद अभ्यास की आवश्यकता रहती है। अभ्यास प्रारंभ में किसी सरल विषय का करना चाहिए। जैसे—किसी के जीवन चरित्र के चिंतन में मन को लगाया गया। जीवन-चरित्र का हमें पूरा ज्ञान है। अतः रुकने की कहीं जरूरत नहीं पड़ती। फिर भी आस-पास के वातावरण से प्रभावित होकर मन अपने विषय से भटक जाता है। इससे घबराना नहीं चाहिए। न निराश होना चाहिए। इसे तो सूत कातने वाले की भांति जोड़ना चाहिए। अभ्यस्त होने के बाद यह काम सुगम हो जाता है।

अतः प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वे मन को मोड़ना सीखें। एक विषय पर उसे केंद्रित करने का अभ्यास करें। अस्थिर चित्त का होना जीवन के लिए अभिशाप है, इसे मिटाना ही होगा। अन्यथा जीवन का सरसब्ज बगीचा वीरान हो जाएगा। ❑

हम तो कबहुं न निज घर आए

एक बार एक चरवाहा गड़रिया, राजा के दरबार में पहुंचकर अपनी गुहार लगाना चाहता था। द्वारपालों ने उसकी दरिद्र दशा देखकर महल के बाहरी द्वार पर ही रोक दिया। वह बेचारा बहुतेरा गिड़गिड़ाया, द्वारपालों को दया नहीं आई। वे जब-जब उससे कुछ पूछते वह बार-बार एक पहेली दुहरा देता। सिपाहियों ने उसे एक ही रटन लगाने पर पागल समझा और बांधकर एक तरफ डाल दिया। उसने अन्न-पानी भी त्याग दिया। द्वारपालों में से किसी एक को तरस आया और वह राजा के सामने जाकर दोनों हाथ जोड़कर विनती करने लगा—'महाराज! एक पागल है। सप्ताह बीत गया और पागलों की तरह एक पहेली दुहरा देता है, साथ ही वह आपके सामने प्रस्तुत होकर ही अपनी बात कहना चाहता है। हुजूर की आज्ञा हो, तो.....। राजा ने दरबार में उसे पेश करने की आज्ञा दे दी।

गड़रिया के सारे बंधन खोल दिए गए। उसे राजा के दरबार में पेश किया गया। राजा ने पूछा—'क्या चाहते हो?' उसने उत्तर में अपनी बात, वही पहेली दुहराते हुए ही कही :

क्या कहूं कछु कहा न जाए,
कहे बिना भी रहा न जाए।
एक बात जंगल में भई-
सात गांव राजा ने दिए,
सातों गांव बकरी चर गई।

राजा भी गड़रिया की पहेली का अर्थ नहीं समझ पा रहे थे। उन्होंने मंत्री से गड़रिया की बात समझाने का आदेश दिया। इतने में गड़रिया को पानी की प्यास लग आई और उसने हाथों को मुख पर सटाकर संकेत से पानी मांगा। राजा को जंगल में स्वयं के प्यास से व्याकुल हो जाने वाली घटना याद हो आई। दरअसल एक बार राजा अपने लश्कर के साथ शिकार खेलने गए थे। वे शिकार का पीछा करते-करते अपना घोड़ा दौड़ाते चले गए और रास्ता भटक गए। उनका प्यास से कंठ सूख गया। वह पानी की तलाश में जंगल से कुछ ही बाहर आए थे कि उन्हें एक आदमी बकरियां चराते हुए नजर आया। राजा ने घोड़ा उधर ही मोड़ दिया। घोड़े पर सवार राजा को देखकर चरवाहा गड़रिया सकपका गया। राजा का प्यास के कारण बुरा हाल था। मुख से बोल नहीं निकल रहे थे। उसने सीधे हाथ की अंजुलि बनाकर अधरों पर लगाकर पानी की याचना का संकेत किया। सांकेतिक भाषा प्रायः हर स्थान पर एक समान ही होती है। अतः सभी समझते हैं। समीप ही एक विशाल पीपल के वृक्ष के नीचे एक कुआं था। चरवाहा गड़रिया ने अपने लोटा-डोर से कुएं में से ताजा शीतल जल खींचकर राजा की प्यास दूर की। राजा की जान में जान आई। राजा खुश हुआ और गड़रिया को कुछ भेंट करने के लिए उद्यत हुआ, परंतु लाव-लश्कर तो पीछे छूट गया था। अपने पास कुछ न देख राजा निराश होने लगा। आखिर उसे एक राह सूझी और उसने पीपल के वृक्ष के नीचे के पत्ते को गड़रिया से उठवाया। उस पत्ते पर राजा ने सात गांव की जागीर, सात सौ स्वर्ण मुद्राएं तथा हाथी-घोड़े दान में लिखकर गड़रिया को वह पत्ता देकर कहा कि जब भी इस पत्ते को लेकर तुम दरबार में हाजिर होकर मंत्री को दोगे, तुम्हें यह सब भेंट में मिल जाएंगे। तुमने हमारे प्राणों की रक्षा की है। ये उसका पुरस्कार होगा।

राजा चला गया। ग्रीष्म की दोपहरी थी। गड़रिया पीपल के नीचे अंगोछा जमीन पर बिछाकर हाथ का सिरहाना बनाकर विश्राम करने लगा। वह जागीर के

लिए लिखी गई तहरीर वाला पत्ता उसने सिरहाने अंगोछे के नीचे रख लिया था। गड़रिया की आंख लग गई। उसकी बकरियों में से एक बकरी ने गड़रिया को पत्ता सिरहाने रखते देख लिया था। गड़रिया के सोते ही उसने अवसर पाकर उस पत्ते को वहां से खींच लिया और खा गई। गड़रिया जब तक जागा खेल खत्म हो चुका था। उसका जमींदार बनने का सपना मात्र सपना ही रह गया। पछताया बहुत, परंतु कुछ भी नहीं हो सकता था, न हुआ। घर पहुंचकर उसने अपनी घरवाली को भी सारी कहानी कह सुनाई। उसने भी गड़रिया की लापरवाही को ही दोषी माना। कुछ दिनों बाद गड़रिया के बहुत बुरे दिन आ गए। वह दाने-दाने का मुहताज बन गया। उसकी घरवाली ने ही उसे राजा के दरबार में जाकर गुहार करने की कहकर भेजा था। वह राजा के सामने था। राजा को पत्ते वाली बात याद आ चुकी थी। उसने पूछा, तुम बकरियां चरानेवाले वही गड़रिया लग रहे हो, जो मुझे एक बार जंगल में मिले थे? तुमने जल पिलाकर मेरे प्राणों की रक्षा की थी। मैंने पीपल के पत्ते पर कुछ दान लिखकर वह पत्ता उसे दिया था। यदि तुम वही हो तो वह पत्ता मंत्री को दे दो। तुम्हें सब वस्तुएं मिल जाएंगी। गड़रिया के पास तो अब कोई प्रमाण नहीं था। अतः उसने अपनी नींद और उस मुंहजोर बकरी का किस्सा राजा को सुनाया। राजा ने उसे ससम्मान भरपूर स्वर्णमुद्राएं, सात ग्रामों की जागीरें आदि देकर विदा करने का फरमान सुनाया। गड़रिया के दिन फिर गए।

लोककथा-कहानियों एवं दृष्टांतों की सत्यता-असत्यता का उतना महत्त्व नहीं है, जितना कि उनके निष्कर्षों से निकलने वाले उपयोगी तथ्यों का। कहानी में दो बातें प्रमुख हैं। एक तो गड़रिया का गहरी नींद में सो जाना और बकरी द्वारा जागीर वाली तहरीर का पत्ता उदरस्थ कर जाना। संसार का यही खेल है। जीव को आत्म-जागीर प्राप्त हुई है। वह सांसारिक बंधनों के कारण मोह नींद से नहीं जाग पाता। उसकी सारी की सारी आत्म-जागीर, आत्म-विस्मृतिरूपी बकरी चट कर जाती है। विषय-वासनाओं के रूप में बकरियों का दल हमारे पीछे दौड़ता रहता है। हमारी मोह नींद नहीं टूटती। आत्म-विस्मृति के कारण ही यह जीव अनादिकाल से भटक रहा है। विवशता के कारण छटपटाता है, परंतु कोई रास्ता नहीं सूझता। जैसे गड़रिया के दिन फिर गए, वैसे ही यदि काललब्धि एवं कर्मों की गति ने पलटा खाया और मोह की नींद और उसकी खुमारी उपशांत हुई तो मानव आत्मदर्शन करता है।

मेरा यह अनुभव है कि हमें अपनी जिस भूल पर पछताना पड़े, कम से कम उसे दुबारा न करने के लिए तो कृतसंकल्प हो जावें। जिसने भी ऐसा कर लिया होगा, उसे फिर पछताने की नौबत नहीं आई होगी, परंतु हम संसारी जीव एक भयंकर भूल करने के कारण ही अनादिकाल से जन्म-मरण के चक्र में घूम रहे हैं। फिर भी भूल, भूलकर भी भूल प्रतीत नहीं होती। यह विडम्बना नहीं तो और क्या है? स्वयं अपनी पकड़ में नहीं आए तो भी एक बार तो क्षम्य है। सद्गुरु का संबोधन मिल जाने के बाद भी मोहजाल उस भूल पर पर्दा डाले रखता है। वह मानव पर को निज मानकर उसी में फंसा रहता है, जिसके कारण आवागमन अवश्यंभावी है। अध्यात्मरसिक पंडित दौलतराम की चेतना जागृत हो गई है। उन्हें अपनी भूल पकड़ में आ गई है। वे उस सच को स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं करते। उस भूल को प्रकट करके, वे उसे दूर भी कर लेना चाहते हैं। उनके अंतःकरण से स्वर फूटते हैं, जो सज्जनों के मर्मस्थल का स्पर्श ही नहीं करते अपितु उनको भूल-सुधार हेतु प्रेरित भी करते हैं। उनका वह अमर गीत इस प्रकार है—

हम तो कबहूँ न निज घर आए।
घर-घर फिरत बहुत दिन बीते नाम अनेक धराए।।
परपद निजपद मानि मगन है, पर परनति लपटाए।
शुद्ध-बुद्ध सुखकंद मनोहर, चेतनभाव न भाए।
नर, पशु, देव, नरक निज जान्यौ, परजय बुद्धि लहाए।
अमल, अखंड, अतुल, अविनाशी आतमगुन नहिंगाए।।
यह बहु भूल भई हमरी फिर, कहा काज पछताए।
'दौल' तजौ अजहू विषयन को, सतगुरु वचन सुहाए।।
हम तो कबहू न निज घर आए।

❑ ❑

जी हां, समय के साथ चलें। आगे चलनेवाली महिलाएं कोई विरली ही होती है, जिन्हें हम क्रांतिकारी कदम उठाने वाली अग्रणी महिलाएं या नेत्रियां कह सकते हैं। इसके लिए असाधारण योग्यता चाहिए। अदम्य साहस चाहिए। बहुत सूझ-बूझ चाहिए। आलोचनाओं-चर्चाओं को झेलने और उनका सही ढंग से उत्तर देने की क्षमता चाहिए और चाहिए वह आत्मबल, जो हर किसी में नहीं होता।

यदि आप में ये धारणाएं, योग्यताएं नहीं हैं तो आप समय के आगे नहीं जा सकतीं। जाने की कोशिश करेंगी तो मुंह के बल गिर सकती हैं। अतः समय के साथ चलिए। न आगे, न पीछे। आगे जा नहीं पाएंगी। पीछे चलने से पिछड़ जाएंगी। घाटे में रहेंगी। अपने लिए संकट मोल लेंगी और दूसरों के लिए बोझ बनेंगी।

मेरी एक परिचिता हैं श्रीमती मेहरा। सुंदर, हंसमुख और आकर्षक व्यक्तित्व की स्वामिनी। बाहर से घर आईं तो जैसे घर में फुलझड़ियां जल उठीं। लेकिन उसके बाद ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, उनका चेहरा वैसे ही राख बनता गया, जैसे फुलझड़ी जल जाने के बाद नीचे ठंडी स्लेटी राख बचती है। एक-दूसरे को समझने की क्षमता है। आज उनके दो प्यारे-प्यारे बच्चे भी हैं। श्रीमती मेहरा का अपना सामाजिक जीवन भी है। सब कुछ हैं, पर बाहर फुलझड़ी-सा जलनेवाला चेहरा घर आते ही राख बन जाता है और इसका कारण है—श्रीमती मेहरा की सास।

समय के साथ, समय से आगे

आशारानी व्होरा

मेहरा उनका इकलौता लड़का है, तो निश्चय ही उन्हें बेटे और बहू से प्यार होना चाहिए। लेकिन मूर्खता की हद तक पहुंची हुई छुआछूत की आदत या सनक ने अच्छे-भले, हंसते, खाते-पीते घर की खुशियां छीन ली है। बहू को सास का आदेश—'जितनी बार टायलेट जाओ, नहाओ। रात के कपड़ों, बिस्तरों को मत छुओ। बिना नहाए चौके में पैर मत रखो। स्वयं नहाने के बाद बिना नहाए बच्चों को भी मत छुओ। बच्चे रबड़ के जूतों के साथ भी चौके में नहीं घुस सकते। यही नहीं, उन्होंने किसी चीज को छू दिया तो वह जूठी हो गई, उसे मत खाओ, फेंक दो। यह न करो, वह न करो। सुबह से शाम तक घर-भर की आफत। न मानो तो पूरे दिन-भर भूखी रहेंगी, खाना नहीं खाएंगी, रोएंगी और भाग्य को कोसेंगी। मानो तो परेशानी। कोई मेहमान आए तो उसके सामने लज्जित होना पड़े, क्योंकि उनके लिए चीनी के अलग बर्तन रखे गए हैं। घरवाले बर्तनों में उन्हें नहीं खिलाया-पिलाया जा सकता। कोई एक बात हो तो कोई माने। समझाने-बुझाने का उन पर कोई असर नहीं और मेहरा दंपती को कोई ऐसा विकल्प आज तक नहीं मिला, जिससे उनकी मांजी को धर्म-भ्रष्टता से बचाया जा सके। उनके कोई और लड़का-लड़की भी नहीं कि चार दिन तो कहीं जाएं। परिणाम यह कि श्रीमती मेहरा का जीवन नरक बना हुआ है। बाहर कुछ समय किसी तरह हंस-बोलकर बिता लेती हैं, घर आने पर फिर बुझ जाती हैं। इन्हीं बातों से किसी को घर बुलाते भी डरती हैं। परिवार के एक व्यक्ति के समय के साथ न चलने या असहयोग ने पूरे परिवार की जिंदगी में घुन लगा दिया है।

श्रीमती मेहरा की सास तो फिर भी पुराने जमाने की हैं। लेकिन कथित पढ़ी-लिखी श्रीमती वर्मा! कस्बे के स्कूल में मैट्रिक तक पढ़ी हैं, पर उन्हें देखकर लगता है, अधूरी शिक्षा से अशिक्षा भली। स्वयं को बहुत बुद्धिमान और आदर्शवादी समझती हैं और शहर की सभी लड़कियों में उन्हें बुराई-ही-बुराई नजर आती है। पति प्रगतिशील विचारों के तथा परिष्कृत रुचि रखने वाले व्यक्ति हैं। बेचारे ने पत्नी के साथ इतनी मेहनत की ताकि वह अपने तथाकथित आदर्शों को छोड़कर समय के साथ चल सके। पर बदलेगा तो वह, जिसे अपनी कोई कमी अखरती होगी। जिसे अपनी हर बात ठीक और शास्त्रसम्मत लगती हो और दूसरों में दोष-ही-दोष दिखाई देते हों, वह भला क्यों बदलने लगा? नतीजा यह है कि श्री वर्मा अब अधिक समय बाहर ही बिताते हैं और श्रीमती वर्मा की कुढ़न और बढ़ती जाती है। जब तब उनकी यह कुढ़न उतरती है वर्मा के ऑफिस में काम करनेवाली मिस मधुमालती पर, जिसके साथ कभी-कभार वर्मा कुछ समय बिताकर स्वयं को भुलाने की चेष्टा करते रहते हैं।

अक्सर ऐसी स्त्रियों को तेजी से बदलते समय की हालत पर ठंडी सांसें लेकर शोक प्रकट करते देखा गया है।...क्या वह जमाना था... और क्या आज का... आग लगे ऐसे जमाने को....! क्या समय आ गया है, कोई किसी की नहीं सुनता, बड़े-छोटे का कोई लिहाज ही नहीं रहा।

समय बड़ा बली है

क्यों सुनेगा कोई? जब बड़े कहेंगे, बच्चे ही हमारी बात मानते जाएं, हम उनकी बिल्कुल न मानें।

बच्चे समय के साथ आगे बढ़ रहे हैं, उन्हें अनुचित आज्ञाओं से आप पीछे घसीटने का प्रयत्न करेंगे तो वे क्यों मानेंगे आप की बात? अनेक माता-पिता को देखा है, पहले अपनी जिद पर अड़े रहेंगे। अपनी चलाते रहेंगे। जब बच्चे तंग आकर विद्रोह पर उतर आएंगे तब समय बड़ा बली है, ऐसा कहकर उसके आगे सिर झुका लेंगे। हार मान लेंगे।

जी-हां, समय बड़ा बली है। इस तथ्य को यदि आप समय से पहले ही पहचान कर चलें तो घर में न दुःख-क्लेश हो, न बच्चों का भविष्य बिगड़े और न बड़ों को ही आगे चलकर हार मानने अथवा निराशा का सामना करने की जरूरत पड़े। बुद्धिमानी से समय के साथ चलने वाला व्यक्ति जीवन की राह पर रपटता नहीं। स्वयं भी सुखी रहता है और घर में भी सुख-शांति का वातावरण बनाए रखता है।

पुरानी कहावत है—जो समय की कद्र करता है, समय उसकी कद्र करता है। परिवर्तन का यह नियम अटल है। फिर स्त्रियां अक्सर पुराने समय की दुहाई देकर अपना मार्ग कंटकाकीर्ण क्यों बनाती हैं? हर युग में, हर समय यही होता है। जो व्यक्ति सूझ-बूझ से समय की गति पहचानकर उसके साथ-साथ बदलते या चलते हैं, वे सफल होते हैं। जो नहीं चलते, नहीं बदलते, वे स्वयं भी कष्ट पाते हैं, दूसरों के लिए भी बोझ बनते हैं।

पुरुष हो या स्त्री, परिवार में किसी एक व्यक्ति के असहयोग से सारा वातावरण दूषित हो जाता है। इस असहयोग का मुख्य आरोप महिलाओं पर ही लगाया जाता है, जो बहुत हद तक सच भी है। पुरुष बाहर जाने-आने और अपनी आंखों से सब देखने के कारण नई बातों का इतना विरोध नहीं करते, जितना घर में रहने वाली स्त्रियां।

इसका एक कारण यह भी है कि परिवार के पुरुष सदस्य और बच्चे भी बाहर की नई जानकारी से घर की स्त्रियों को परिचित नहीं कराते। यदि वे समय-समय पर उन्हें नवीन बातों या परिवर्तनों की जानकारी देते रहें तो इतना विरोध न हो। अज्ञानता के साथ-साथ एक मनोवैज्ञानिक कारण भी इसमें जुड़ा है। यह मानव का स्वभाव है कि वह स्वयं जिन बातों से वंचित रहता है दूसरों को उसका उपयोग करते देख नहीं सकता। सह नहीं सकता। बेशक बच्चों के प्रति मां का प्यार इन बातों से ऊपर होता है, पर जाने-अनजाने किसी हद तक

यह मानसिक प्रवृत्ति भी होती ही है। इसके पीछे मांएं आगे बढ़ते बच्चों की आकांक्षाओं-महत्त्वाकांक्षाओं को समझ उनकी उचित बातों का विरोध न करे, अपने दकियानूसी विचार उन पर न थोपें और बेटा-बेटी मां को समय के अनुकूल चलाने-ढालने में सहयोग करे, तो पीढ़ी-संघर्ष जैसी बात नहीं उठती और बात बन जाती है।

धीरे-धीरे मानसिक तैयारी

पर यह मानसिक तैयारी कोई एक दिन में नहीं हो जाती। स्त्रियों को चाहिए कि वे धीरे-धीरे इसके लिए तैयार हों। पति की रुचियों और बच्चों की इच्छाओं के अनुसार स्वयं को ढालना सीखें। उनकी बातों में रुचि लेकर स्वयं भी जीवन का आनंद लें और उन्हें भी आगे बढ़ने में अपना स्नेह, अपनी प्रेरणा, अपना सहयोग प्रदान करें। पतियों को भी चाहिए कि तुम क्या समझोगी कहकर उन्हें झटककर अलग न कर दें। उन्हें अपने साथ बाहर ले जाएं। ऐसे लोगों से मिलाएं, जिनके प्रत्यक्ष उदाहरण देखकर उनकी धारणाएं बदले, समय-समय पर प्राप्त होने वाली नई सूचनाओं से उन्हें अवगत कराते रहें। उनके सामान्य ज्ञान का स्तर ऊंचा करते रहें। इससे पत्नियां तो आगे बढ़ेंगी ही, उन्हें भी कम लाभ नहीं पहुंचेगा।

अगर हमें अपने जीवन को सुखी, समृद्ध बनाना है, इसे रो-धोकर काटना नहीं, हंसते-खेलते जीना है, तो इसका सरल समर्थ नुस्खा है—स्वयं समय के साथ चलें और जो रिश्तेदार इसमें बाधक बनें, उन्हें सहयोग के आधार पर अपने साथ चलने के लिए तैयार करें। अनेक पढ़े-लिखे व्यक्ति रिटायर होने के बाद परिवार के लिए बोझ बन जाते हैं। यह सब उम्र, अनुभव में बड़े लोगों की मानसिक तैयारी, सहयोग-भावना और समय के साथ वे कितना चल या बदल पाते हैं, इस पर निर्भर करता है। फिर भी यदि देखें कि दूसरा पक्ष एकदम असहयोगी है तो अपना आत्मसम्मान खोकर सुरक्षित जीवन जीने के बजाए, आत्मनिर्भरता का कष्टदायी जीवन अपनाना बेहतर होगा। कौन साथ रह रहा है, कौन अलग, समाज की दृष्टि आज इस पर नहीं। कौन कैसे, किस इज्जत, शान से जी रहा है, इस पर है। दुनिया समय के साथ सिर उठाकर चलने वालों के साथ ही चलती है।

हां, समय के साथ ही चलिए। फिर दुहराती हूं कि समय से आगे चलने के लिए बहुत ऊंचे चरित्र, असाधारण योग्यता और साहस की आवश्यकता होती है। इसके अभाव में दुस्साहसपूर्ण कदम उठाने वाले पहले शेखी बघारते नजर आते हैं, बाद में टूटकर बिखर जाते हैं और स्वयं दुःखी होते हुए भाग्य को या समाज को कोसने लगते हैं। इसलिए समय के साथ चलें। पीछे रहकर आप पिछड़ी या दकियानूस कहलाएंगी, दुःख उठाएंगी और दूसरों को भी दुःखी करेंगी और योग्यता के अभाव में द्रुत गति से आगे बढ़ने पर अपनी स्थिति हास्यास्पद बनाएंगी! ठोकर खाकर औंधे मुंह गिर भी सकती हैं।

साथ चलते हुए ही आगे बढ़ें

पर आप में योग्यता है, आत्मविश्वास है, तो हिम्मत करके आगे बढ़िए, दूसरों के लिए आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करते हुए उनकी प्रेरणा बनिए, दुनिया आपके पीछे चलने लगेगी। इतनी योग्यता, इतनी हिम्मत नहीं है, तो भी कोशिश करके एक-एक कदम आगे रखने के लिए धीरे-धीरे स्वयं में शक्ति और साहस जुटाइए। आप पाएंगी, समय के साथ चलते हुए भी आप समय से आगे निकल रही हैं और अर्जित व्यक्तित्व की संस्कारिता, दृढ़ता, गुणी विनम्रता के साथ थोड़ा भी आगे चलने का अर्थ होता है, सामान्य लोगों से कुछ ऊंचा उठकर इज्जत की, सम्मान की जिंदगी जीना। दूसरों के साथ कुछ बांटकर, उन्हें कुछ देकर, उनके लिए कुछ करके मानसिक सुख-संतोष प्राप्त करना। जीवन की सार्थकता की तलाश में न खाली हाथ चलना, न मन में मलाल लेकर हाथ मलना। अपनी पीड़ाओं, कुंठाओं, दुर्बलताओं को झाड़-झटककर अनमोल अनुभवों के मोती जुटाते जाना। आजमाकर देखिए, निरर्थक-सा लगने वाला यह जीवन ही आपको सार्थक लगने लगेगा। ❑

अंधी आंखें उजले आंसू

निशांत केतु

रात के साढ़े ग्यारह बज चुके थे और सभी विद्यार्थी अपने-अपने कमरे में किताबें खोले कुछ इस तरह बैठे थे, जैसे वे छात्र नहीं, पत्थर की मूर्तियां हों। कहीं कोई आवाज नहीं। दस दिनों बाद एम. ए. की परीक्षा होने जा रही थी। नीचे की कक्षाओं के छात्र एम. ए. परीक्षार्थियों का लिहाज कर शोर-गुल नहीं कर रहे थे। इस गंभीर वातावरण के बहाने वे भी कुछ पढ़ ही लेते थे। तभी बिजली गुल हो गई और अंधकार फैल गया। फिर छात्रावास के हर कमरे से कुत्ते, बिल्ली, गीदड़, गधे, कौओं की आवाजें आने लगी। विद्युत्-तरंग अब भले न हो, पर ध्वनि-तरंग से संपूर्ण छात्रावास गूंज उठा। कुछ देर तक सबने बिजली के लौट आने का इंतजार किया, किंतु बिजली उस मां की तरह अपने बेटे-बेटियों को रोशनी न लौटा सकी, जो अपने बच्चे के स्वास्थ्य का खयाल कर कहती हों— 'अब दिन के उजाले में पढ़ना, अभी सो जा। जान है तो जहान है।' लेकिन यह तो छात्रावास था, जहां न मां और न लाल।

जब आधा घंटा समय निकल गया और बिजली नहीं लौटी तो सभी छात्र कमरे से निकलकर छात्रावास के बीच खुले में दूब पर आ बैठे। कमरा नंबर छह के छात्रों ने बैठे-बैठे परीक्षा संबंधी विवाद चलाया तो सबने मिलकर उन्हें ऐसा बनाया कि उन्हें गप की बातों में शामिल होना पड़ा। तभी अनुभव किया गया कि निरंजन और प्रकाश गोष्ठी में अनुपस्थित हैं। फिर एक कहकहे-ठहाके से वातावरण गूंज उठा, जब एक छात्र ने रहस्योद्घाटन किया... अरे, इन अंधों की बन आई। वे अंधेरे में भी पढ़ रहे होंगे। सचमुच! दोनों अपने कमरे में अपनी-अपनी कुर्सियों पर बैठे मोटे कागज पर खुदे ब्रेललिपि के चिह्निताक्षरों को उंगलियों से पढ़े जा रहे थे। प्रकाश अंग्रेजी और निरंजन अर्थशास्त्र में एम.ए. की परीक्षा देने जा रहे थे। मैं एम.ए. पूर्वार्द्ध में था और एम.ए. वालों के साथ अंधों की इस बात पर हंसा तो अवश्य था, परंतु फिर उससे अधिक रोना ही आया।

छात्रावास में मेरे प्रवेश के कुछ ही दिन पूर्व दो अंधे छात्र वहां रहने आए थे। वह कमरा था तो तीन छात्रों के लिए, किंतु उसमें रहते वे दो ही—प्रकाश और निरंजन। उनके साथ आंखों वाला कोई तीसरा व्यक्ति रहने को तैयार नहीं हुआ था। छात्रावास को इस एक सीट के किराए का घाटा था। ऊपर से यह लिखा-पढ़ी भी चल रही थी कि इन अंधे छात्रों से बिजली का किराया लिया जाए या नहीं। प्रकाश निरंजन का आंदोलन था कि सुपरिंटेण्डेण्ट चाहें तो उनके कमरे से बल्ब उतार लें। उन्हें रोशनी की क्या आवश्यकता? वे बिजली का चार्ज नहीं देंगे। यह दूसरा घाटा था। लेकिन बिजली खर्च पर छात्रावास अधीक्षक ने अंततः अपना निर्णय सुना दिया कि उन्हें बिजली का खर्च देना होगा, क्योंकि मेस के नौकर जब खाना रखने जाएंगे या इनसे मिलने रात में कोई आंख वाले संबंधी या मित्र आएंगे तो उन्हें उजाले की आवश्यकता होगी ही। बिजली का चार्ज इनसे नहीं लिया जाए, इस आंदोलन में मैंने सहयोग दिया था, और यही आधार था, जिस पर इन दोनों नेत्रहीन छात्रों से मेरा परिचय हुआ था।

छात्रावास में साठ छात्र थे और ये दोनों नेत्रहीन छात्र चप्पल की आवाज पर सबका नाम बता देते। एक बार परिचय हो जाने पर ये उसे कभी भूलते नहीं थे।

मुझे प्रकाश से घनिष्ठता ही हो चली थी। उसमें जरा साहित्यिक रुचि भी थी। निरंजन स्वभावतः शांत तथा आत्मकेंद्रित थे। परिचय तो उससे भी था, किंतु प्रकाश से दोस्ती हो चली थी। प्रकाश अंधे थे। प्रकाश की एक किरण भी देख पाने में सर्वथा असमर्थ थे और नाम था 'प्रकाश'। मुझे इस नामोच्चारण में आत्मग्लानि का अनुभव होता, अतः मैं उन्हें पीकू बाबू कहता। एक बार प्रकाश के पिताजी आए थे और उन्हें इसी नाम से संबोधित किया था।

निरंजन जन्मांध थे। रोशनी की एक झलक भी नहीं देखी थी। एक दिन मैंने रोशनी के सात रंगों के विषय में निरंजन से पूछा तो उन्होंने बताया कि वे सबका सिर्फ नाम जानते हैं, अंतर समझ नहीं पाते। 'रंग' का अनुभव नहीं है। मैं सोच-सोचकर घबराने लगा कि दृश्य-जगत के समग्र सौंदर्य से वे वंचित हैं। निरंजन को आंखों की बड़ी ललक थी। प्रकाश में आंखों के लिए वैसी कोई तड़प नहीं थी। रोशनी में खूबसूरती है तो बदसूरती भी कम नहीं।

पीकू बाबू की टेबल पर मोटी-मोटी किताबें थी। सामने टाइमपीस घड़ी रहती, जिसका शीशा उन्होंने फोड़ रखा था। और छोटी-बड़ी सुइयां उंगलियों से टटोलकर ठीक-ठीक समय मालूम कर लेते थे। उनकी लेखनी सुए की तरह थी, अतः निब टूटने या घिसने की चिंता से वे मुक्त थे। स्याही का तो कोई सवाल ही नहीं था। वे मोटे-मोटे पन्नों पर छेदकर ब्रेललिपि लिखते और जब चाहें, पन्नों के उभरे बिंदुओं पर तर्जनी रखकर आंख वालों की तरह तेजी से पढ़ लेते थे। इनकी किताबें बहुत मोटी-मोटी हुआ करती थीं। एक रैक में आठ-दस किताबों से ज्यादा अंट नहीं पातीं। साठ रुपए महीने पर दोनों ने एक-एक रीडर रख लिया था। प्रातःकाल रीडर आता और सम्बद्ध ग्रंथ का धीरे-धीरे पाठ करता। नेत्रहीन छात्र अपनी ब्रेललिपि में उसे लिखते। समय निकालकर मैं भी पाठक का कार्य कुछ-कुछ कर दिया करता था।

गर्मियों की एक शाम दोनों छात्रावास की फुलवारी में नौकरों से कुर्सियां निकलवाकर बैठे बातें कर रहे थे। उत्सुकतावश मैं पास ही दूब पर बैठा चुपचाप इनकी बातें सुनने का प्रयत्न कर रहा था। उस समय दोनों आपस में झगड़ रहे थे। प्रकाश कह रहे थे, सूर्यास्त हो गया है। निरंजन कह रहे थे कि अभी सूर्यास्त में कम-से-कम पौन घंटे की देरी है। मुझे इच्छा हुई कि मैं जाकर कह दूं सूर्यास्त हुए आध घंटे से ज्यादा हो चुका है, पर चुप ही रहा। दोनों में फिर यह निश्चय हुआ कि इधर से कोई छात्र गुजरे तो ध्वनि पहचानकर उन्हें बुलाया जाए और पूछ लिया जाए। कुछ देर तक दोनों चुप रहे। फिर अचानक मौन भंग करते हुए प्रकाश ने पूछा—'निरंजन, शादी के संबंध में तुम्हारे क्या विचार हैं?'

पता नहीं प्रकाश ने सहसा क्या सोचकर यह सवाल उठाया। छात्रावास के आंगन में बेला के बहुत से फूल हैं। गर्मियों की शाम थी। फुलवारी में बिजली की रोशनी फैल गई। धीरे-धीरे हवा चलने लगी थी। हवा में बेला की गंध थी। संभव है खुशबू ने प्रकाश के हृदय की भीतरी तह को छू लिया हो। एम.ए. की परीक्षा के बाद तो नौकरी और शादी, दो ही बातें थीं। निरंजन सहसा पूछे गए इस प्रश्न के उत्तर के लिए तैयार नहीं दीख रहे थे, पर इस सवाल पर उनके होंठों पर खुशबू की बेजुबान हंसी खिंच आई। फिर भी वे पसोपेश में थे। जरा शरमाकर उन्होंने उत्तर दिया—'शादी! हां, मैं शादी अवश्य करूंगा। और प्रकाश, मैं अपनी पत्नी को बहुत बहुत प्यार करूंगा। जाने कब से यह प्यार सीने में छुपाए जा रहा हूं।'

'लेकिन निरंजन, हम लोगों से शादी करेगा भी कौन?' प्रकाश ने यथार्थ को सामने रखा। निरंजन जरा चिंतित होते हुए बोले—'हां भाई, यह समस्या तो है। कोई आंख वाली हम लोगों से शादी क्यों करने लगी।'

'...केवल यही समस्या नहीं है कि कोई आंख वाली शादी करने को तैयार नहीं होगी। यदि कोई तैयार भी हो तो उसकी क्या दशा होगी, जिसका पति अंधा हो। मुझे हिंदी के इस मुहावरे में गहरी पीड़ा पिरोई लगती है, 'कापर करूं सिंगार पिया मोर आन्हर' उफ् मैं विवाह नहीं करूंगा, नहीं करूंगा, कभी नहीं करूंगा।'

निरंजन यह नहीं देख-समझ सके कि प्रकाश की अंधी आंखों से ढेर सारे आंसू छलक कर बह गए हैं।

'हमारा भी क्या जीवन है?' निरंजन ने जैसे करुणा की किसी अंधकारमयी गुफा से विवशता की कारा से उत्तर दिया। प्रकाश को पराजय का यह स्वर अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—'लेकिन नहीं, हम मरेंगे नहीं, काम करेंगे। केवल आंख वाले ही नहीं, अंधे एम.ए. पास कर सकते हैं। और फिर हम किसी-न-किसी पद से समाज की सेवा करते हुए आजीविका अर्जित करेंगे। तुम जॉन मिल्टन को नहीं जानते। वह बावन वर्ष की उम्र में अंधा हो गया और उसी अवधि में अपनी सर्वोत्तम साहित्यिक कृतियां 'पैराडाइज लॉस्ट' एक 'पैराडाइज रिगेण्ड' लिखीं। हिंदी में सूरदास के सवा लाख पद अपनी साहित्यिक समृद्धि के लिए आज भी अप्रतिम है। और फिर हमीं अकेले अंधे नहीं। हमारे साथ भारत में तीस लाख अंधे व्यक्ति हैं और जब अंधे हो ही गए, तो रोना क्या? सुनो, पढ़ने की घंटी बज गई है। अब चलो उठो।'

दोनों उठे और ध्वनि के धागे पकड़कर एक-दूसरे के पास आए और फिर एक-दूसरे का हाथ पकड़ कमरे की ओर चले गए।

मैं वहीं-का-वहीं बैठा रह गया। ये अंधे हैं, क्योंकि वर्तमान को देख नहीं पाते। हम भी तो न अतीत को देख पाते हैं, न भविष्य को। और वर्तमान में भी जब सूरज या प्रकाश का अन्य कोई स्रोत नहीं होता तो देख नहीं पाते। और फिर देखकर भी हम बहुत-सी चीजें देख नहीं पाते। क्या हम अंधे नहीं हैं? इन आंखों से कितनी कुरूप-विद्रूप चीजें देखनी पड़ती हैं। ईश्वर के आंखें नहीं है और इसीलिए वह निर्विकार है। सोचता-सोचता उदास होता रहा। खाने की घंटी बजी तो मन-मस्तिष्क के कटोरे में लौटकर पारदबिंदु-सा ढलकने लगा।

निरंजन और प्रकाश में कभी-कभी धार्मिक धारणाओं पर भी विवाद हो जाया करता। छात्रावास गंगा के किनारे था। निरंजन नियमतः प्रतिदिन गंगा स्नान करते थे। यह बात प्रकाश को तनिक अच्छी नहीं लगती। गंगा के नाम से ही प्रकाश के मन में बहुत चिढ़ थी। निरंजन कहते—'तुम अंग्रेजी पढ़ते हो, इसीलिए नास्तिक हो, धर्म-कर्म से विश्वास उठ गया है।' प्रकाश उत्तर देते—'नहीं, यह बात नहीं। यह युग विज्ञान का है। हर बात का वैज्ञानिक आधार होना चाहिए। क्या तुम सोचते हो कि प्रतिदिन गंगा-स्नान से तुम्हारी आंखें अच्छी हो जाएंगी।'

जैसे चोर पकड़ा गया हो, निरंजन यह सुनकर घबरा गए। पहले तो निरंजन यह समझते रहे कि गंगा-स्नान करते-करते एक दिन एकाएक उनकी आंखें अच्छी हो जाएंगी और तब प्रकाश को निरंजन की धार्मिक मान्यताओं का लोहा मानना पड़ेगा। यह राज तो उन्होंने प्रकाश से छिपा रखा था, उन्हें कैसे मालूम हो गया? यह सोचकर निरंजन असमंजस में चुप रहे। प्रकाश ने फिर कहना शुरू किया—'निरंजन! मुझे गंगा से बहुत चिढ़ है। जानते हो क्यों? मैं ग्यारह वर्ष का था। गंगा में जब बाढ़ आती और बाढ़ के कारण दूर-दराज से बह-बहकर गंगा में लकड़ियां, पेड़-पौधे इत्यादि तैरते आते तो मेरे चाचाजी का काम था, तैर-तैरकर लकड़ियां इकट्ठा करना और पचासों मन लकड़ी इकट्ठा होने पर बिक्री कर देना। इसमें उन्हें आनंद आता और पैसे भी मिलते। मैं उनके द्वारा इकट्ठी की गई लकड़ियों की रखवाली करता। एक दिन किनारे से तीन-चार सौ गज की दूरी पर एक मोटा धड़ बहता चला जा रहा था। चाचा ने सोचा—यह तो जलावन नहीं, चौखट-दरवाजे की लकड़ी दीखती है। ऐसा सोचकर वे तैरकर तुरंत उसके पास आए। लेकिन वह काठ या पेड़ का धड़ नहीं, विशाल अजगर था, जो लंबायमान बहा जा रहा था।

चाचा उसके पास जाकर उसकी लपेट से बच नहीं सके, उसके साथ-साथ बह गए। यह मैंने अपनी आंखों से देखा था। फिर दूसरे वर्ष में मुझे चेचक हुआ और ये आंखें जाती रहीं। मुझे गंगा से बहुत विरोध है, निरंजन! मैं यह भी जानता हूं कि यह मेरी हठधर्मिता है। इसमें गंगा का क्या दोष? यह तो चाचा की भूल थी कि अजगर को पेड़ का धड़ समझ बैठे। लेकिन गंगा-स्नान और आंखों की ज्योति की प्राप्ति में कोई संबंध नहीं है।

प्रकाश को बहुत कम दशाओं में अपनी अंधता पर दुःख हुआ करता, पर निरंजन आंखों के लिए हमेशा तरसते। बात उलटी थी। प्रकाश ने प्रकाश का चमत्कार देखा था, अतः उन्हीं में आंखों के लिए अधिक लालसा उचित थी, किंतु इस लालसा के स्थान पर उनमें एक विचित्र निर्वैयक्तिक निश्चिंतता थी, गंभीरता के साथ कष्ट-सहिष्णुता थी। एम.ए. की परीक्षा समीपतर आकर सिर पर लटक गई। निरंजन का दैनिक गंगा-स्नान और भी निष्ठापूर्वक चलने लगा। अब गंगा का गर्भ बाढ़ के कारण लबालब भरा था। एक दिन अचानक निरंजन के चरण खिसक गए और वे धारा में बह गए। किनारे खड़े स्नानार्थियों ने दाएं-बाएं तैरने के कई निर्देश दिए, पर निरंजन को धारा बहा ले ही गई। प्रकाश ने सुना तो गिरता-पड़ता नदी के किनारे पहुंचकर चिल्लाना शुरू किया—निरंजन, निरंजन की कई आवाजें लगाईं, पर निरंजन ने कोई उत्तर नहीं दिया।

तब से प्रकाश हर शाम गंगा तट पर ही चले जाते। वहां उनकी अंधी आंखों से बहुत सारे उजले आंसू बहकर गंगा में मिल जाते। निरंजन के लिए वे रोज ही ऐसा तर्पण करते। परीक्षा अब आ ही गई। तैयारी अच्छी थीं, पर प्रकाश ने इम्तिहान नहीं दिया। वे छात्रावास छोड़कर हमेशा के लिए घर चले गए। कमरा नंबर पचीस में अब चार छात्र हैं, चारों ही आंख वाले। ❑

मर कर, कौन-क्या साथ लेकर जाएगा?

फकीर के पास एक सम्राट आया। वह जब जाने लगा तब फकीर ने पांच-दस कंकड़ सम्राट को देते हुए कहा—मेरे ये कंकड़ ले जाओ। जब तुम मरकर अगले लोक में जाओ तब मैं वहां तुमसे मिलूंगा। तब मेरे ये कंकड़ मुझे दे देना। सम्राट हंसकर बोला—बड़े भोले हो तुम। क्या कोई भी व्यक्ति मर कर अपने साथ कुछ ले जा पाता है? यह असंभव है।

फकीर बोला—तुम सच कह रहे हो?

सम्राट बोला—हां, यह सच है। सब जानते हैं। फकीर ने कहा—फिर प्रजा का शोषण कर तुम इतना वैभव क्यों एकत्रित कर रहे हो? मैं तो समझता था, और कोई ले जाए या नहीं, तुम अवश्य ही सारा वैभव साथ ले जाओगे। यदि नहीं ले जा सकते तो फिर इतनी मूर्खता क्यों कर रहे हो? सम्राट की आंखें खुल गईं।

मूर्च्छा के कारण व्यक्ति संग्रह करता है उस समय वह अगले जन्म की बात भूल जाता है।

अवधूत के चौबीस गुरु

धर्म में पारंगत राजा यदु ने परमज्ञानी अवधूत दत्तात्रेय को निर्भय विचरते देखा तथा धर्म-तत्त्व को जानने की इच्छा से उनसे निम्नांकित प्रश्न पूछे—

यदु ने कहा—'हे ऋषि! बिना किसी कार्य को करते हुए भी आपने इस विशुद्ध ज्ञान को कैसे पाया जिसके बल से आप सारे संगों से मुक्त होकर शिशुवत निर्भय अवस्था में संपूर्ण सुख में विचरण कर रहे हैं?'

—बुद्धिमान यदु से इस प्रकार पूछे जाने पर उस ब्राह्मण ने राजा से कहा—'मेरे बहुत से गुरु हैं। मैंने अपनी बुद्धि से उन गुरुओं से शिक्षा पाई है। उनसे ज्ञान को प्राप्त कर मैं असंग इस पृथ्वी पर विचरण करता हैं, मैं तुम्हें बताना चाहता हूं कि वे कौन-कौन से मेरे गुरु हैं।

'पृथ्वी, वायु, गगन, जल, अग्नि, चन्द्र, समुद्र, सूर्य, कबूतर, अजगर, समुद्र, पतंग, भौंरा, हाथी, मधुमक्खी, हरिण, मछली, पिंगला नर्तकी, काग, शिशु, स्त्री, तीर-निर्माता, सर्प, मकड़ा बर्रे—हे राजन्! ये मेरे चौबीस गुरु हैं जिनसे मैंने शिक्षा पाई है। उनके स्वाभाविक गुणों से मैंने अपने सारे पाठ पढ़े हैं।'

पृथ्वी—'ज्ञानी मनुष्य अपने धर्म-मार्ग से कभी भी विचलित न हो। नियति के वशीभूत हो यदि जीवगण उसे कष्ट भी दें तो भी वह अविचल रहे। इस तितिक्षा को मैंने पृथ्वी से सीखा है। मैंने पर्वतों से जो पृथ्वी के ही भाग हैं, यह सीखा कि हमारे सारे कर्म परोपकार के लिए होने चाहिए तथा हमारा अस्तित्व ही परोपकारार्थ होना चाहिए। मुझे सदा दूसरों की सेवा में ही रहना चाहिए।'

'ज्ञानी अपने जीवन-निर्वाह में ही संतुष्ट रहे। वह इंद्रिय-सुख के लिए लालायित न हो, क्योंकि इससे व्यर्थ पदार्थों में पड़कर मन विक्षिप्त हो जाएगा तथा ज्ञान नष्ट हो जाएगा।'

वायु—'वायु के समान ही योगी वस्तुओं से निर्लिप्त रहे। शरीर में विभिन्न वस्तुओं के रहते हुए भी वह उनसे असंग रहे। वस्तुओं के भले-बुरे परिणामों से भी उसका मन अप्रभावित रहना चाहिए। वायु सुगंधित एवं दुर्गंधपूर्ण पदार्थों से होकर बहते हुए भी अलिप्त रहता है ठीक उसी प्रकार ज्ञानी को भी रहना चाहिए। आत्मा शरीर में प्रवेश करती है तथा शरीर के गुण उसके अपने जैसे मालूम पड़ते हैं, परंतु ऐसा नहीं है। वायु गंध का वहन करता है परंतु गंध वायु का गुण नहीं है। यह शिक्षा मैंने बाह्य वायु से ग्रहण की है।'

मैंने प्राण से यह शिक्षा ली है कि मनुष्य को जीवन रक्षा के लिए आहार करना चाहिए न कि आहार के लिए ही जीवन यापन करना चाहिए। वह इंद्रियों के पोषण तथा उन्हें सबल बनाने

के लिए भोजन न करे। उतना ही भोजन करे जो जीवन की ज्योति को बनाए रखे।'

आकाश—'आत्मा सर्वव्यापक है। वह शरीर तथा शरीर के गुणों से अलिप्त है। ऐसा मैंने आकाश से सीखा, जो सर्वव्यापक है तथा मेघ तथा अन्य वस्तुओं से अलिप्त है। शरीर में रहते हुए भी ज्ञानी गगन सदृश आत्मा के साथ एकता स्थापित कर आत्म-चिंतन करे। जिस प्रकार एक ही सूत्र में माला के फूल ग्रथित रहते हैं उसी प्रकार उस आत्मा के अधिष्ठान में सारे चल एवं अचल भूत पदार्थ ग्रथित हैं। आत्मा देश-काल से सीमित नहीं है तथा वह किसी भी वस्तु से लिप्त नहीं होती।'

जल—'जल स्वभावतः शुद्ध, स्निग्ध तथा मधुर होता है। उसी प्रकार मनुष्यों में ज्ञानी भी रहता है। वह तीर्थ के जल के समान लोगों को अपने दर्शन, स्पर्श तथा भगवन्नाम के उच्चारण के द्वारा शुद्ध बनाता है। यह मैंने जल से सीखा है।'

अग्नि—'भास्वर, ज्ञान में सबल, तपस्या से विभासित, पेट के अतिरिक्त भोजन के लिए अन्य कोई पात्र न रखते हुए तथा सब कुछ भक्षण करते हुए ज्ञानी अग्नि के समान ही अलिप्त रहता है। वह कभी-कभी दृष्टि में नहीं आता। कभी-कभी वह कल्याण कृत मनुष्यों की दृष्टि में आ जाता है। श्रद्धालु भक्तों द्वारा प्रदत्त शिक्षा को वह खाता है तथा उनके भूत एवं भविष्य के मलों को भस्मीभूत कर डालता है।'

चन्द्रमा—'चन्द्रमा की घटती-बढ़ती चन्द्रमा के परिवर्तन के कारण नहीं होती वरन् सूर्य के प्रकाश के परिवर्तन के कारण होती है। अतः मैंने यह सीखा कि जन्म, वृद्धि, जरा, मृत्यु इत्यादि शरीर के विकार हैं, आत्मा के नहीं। आत्मा असीम, अजर तथा अमर है। चन्द्रमा ज्यों का त्यों रहता है, केवल ग्रह-गति के कारण ही उसमें प्रतीयमान परिवर्तन होता है।'

सूर्य—'सूर्य रोशनी के द्वारा जल खींचता है और कालांतर में सारे जल को लौटा भी देता है। ज्ञानी भी ग्रहण करता है देने के लिए ही, अपने अधिकार की वृद्धि के लिए नहीं। जिस प्रकार एक ही सूर्य विभिन्न जल-पूर्ण पात्रों में प्रतिबिंबित होकर विभिन्न मालूम पड़ता है। ठीक उसी प्रकार आत्मा भी विभिन्न शरीर में मन की उपाधियों में विभिन्न रूप से प्रतिबिंबित होकर विभिन्न मालूम पड़ता है।'

कबूतर—'अधिक आसक्ति बुरी है। मनुष्य को किसी भी व्यक्ति के साथ अधिक ममता अथवा आसक्ति नहीं रखनी चाहिए। किसी भी वस्तु के प्रति अत्यधिक आसक्ति मनुष्य के विनाश का कारण है, यह मैंने कबूतर के जोड़े से सीखा। एक वृक्ष के ऊपर कबूतर ने घोंसला बनाया तथा अपनी मादा के साथ कुछ वर्षों तक निवास किया। वे दोनों एक-दूसरे के प्रति अति रागासक्त थे। बड़ी ममता के साथ उन्होंने बच्चों का पोषण किया। एक दिन घोंसले में ही बच्चों को छोड़ वे भोजन की तलाश में चल पड़े। एक शिकारी ने जाल फैला कर उन बच्चों को पकड़ लिया। कबूतर/कबूतरी भोजन लेकर नीड़ को लौटे। मां की बच्चों पर अत्यधिक ममता थी। वह जानबूझ कर जाल में गिर पड़ी। नर कबूतर भी जाल में जा फंसा। शिकारी ने बच्चों के साथ कबूतर को भी पकड़ लिया। वह बहुत ही संतुष्ट होकर घर चला। उसी प्रकार अनियंत्रित इंद्रिय वाले दुःखी परिवार के लोग वैवाहिक जीवन में सुखोपभोग करते हुए उस कपोत और कपोती के समान ही शोक में निमग्न हो जाते हैं। मानव जन्म पाकर जो व्यक्ति गृहस्थ जीवन से आसक्त है वह उन पक्षी के समान ही जाल में जा गिरते हैं।'

अजगर—'विशाल अजगर अपने स्थान पर ही स्थिर रहता है और जो कुछ भी आहार उसे स्वतः आ प्राप्त होता है उसी से तृप्त रहता है। अजगर की भांति मनुष्य को भी प्रयत्न रहित बनकर जो कुछ भी आहार संयोगवश आ प्राप्त हो, सुस्वादु या नीरस, अधिक या अल्प उसी को ग्रहण करना चाहिए। अजगर की भांति उसे नियति के अवलंब पर रहना चाहिए। शक्तिशाली शरीर के रहते हुए भी तथा बल तथा धैर्य से युक्त होकर भी वह अलस

पड़ा रहे तथा सबल इंद्रियों के रहते हुए भी प्रयत्न न करे।'

सागर—'ज्ञानी को शांत, गंभीर, अथाह, असीम तथा अविचल प्रशांत सागर की भांति रहना चाहिए। सागर कभी-कभी नदियों से अत्यधिक जल को प्राप्त करता है और कभी-कभी अत्यल्प। फिर भी वह एक समान ही बना रहता है। उसी प्रकार वह ज्ञानी भी जिसने अपने हृदय को ईश्वर पर स्थिर किया है, न तो हर्ष से फूलता है और न शोक से खिन्न होता है।

पतंगा—अनियंत्रित इंद्रिय रखने वाला मनुष्य स्त्री, ईश्वरीय माया को देखकर उसके भाव एवं व्यवहार से मोहित होकर अंधकूप में ठीक उसी प्रकार जा गिरता है जिस प्रकार पतंगें अग्नि में जा मरते हैं। वह मूर्ख, जो स्त्री, स्वर्णाभूषण, वस्त्र आदि माया रचित वस्तुओं को भोग-वस्तु मानता है वह अपनी शुद्ध दृष्टि को खो कर पतंगे की भांति ही विनष्ट हो जाता है।

मधुमक्खी—'ज्ञानी मनुष्य घर-घर भिक्षा के लिए जावे। हर घर से हथेली भर प्राप्त करे। उतना ही भोजन प्राप्त करे जितना उसके शरीर-निर्वाह के लिए पर्याप्त हो। किसी गृहस्थ के ऊपर भार न डाले। मधुमक्खी जिस प्रकार सभी फूलों से मधु एकत्र करती है ठीक उसी प्रकार वह भी भिक्षा एकत्र करे।'

हाथी—'संन्यासी अपने पैरों से भी काष्ठ निर्मित युवा स्त्री को न छुए। ऐसा करने पर वह उसी प्रकार बंध जाएगा, जिस प्रकार नर हाथी मादा हाथी के स्पर्श के द्वारा बांध लिया जाता है। ज्ञानी मनुष्य स्त्री के संग को उसी तरह त्यागे मानो कि वे मृत्यु ही है।'

कृपण—'कृपण मनुष्य जो धन का संग्रह करता है वह न तो दान देता है और न स्वयं ही धन का उपभोग करता है। जो कुछ भी वह कठिनाई के साथ एकत्र करता है, उसे अन्य ले जाते हैं। जिस प्रकार मधुमक्खी के छत्ते से मधु ले लिया जाता है ठीक उसी प्रकार कंजूस से धन छीन लिया जाता है।'

मृग—'यति विषय संबंधी संगीतों का श्रवण न करे। वह मृग से शिक्षा ले। मृग शिकारियों के संगीत के मोह में पड़ बंध जाता है। मृगी से उत्पन्न शृंगी ऋषि स्त्रियों द्वारा विषय-संगीत को सुन कर आसानी से बंधन में पड़ गए। वे स्त्रियों के हाथों का खिलौना बन गए।'

मछली—'जिस प्रकार मछली बंसी में लगे हुए आहार से आकृष्ट होकर बंध जाती है उसी प्रकार जिह्वा के प्रलोभन में पड़ मूर्ख मनुष्य मृत्यु का शिकार बन जाता है। जिह्वा अथवा स्वाद के प्रति राग को जीतना सबसे अधिक कठिन है। जिह्वा को नियंत्रित करने पर अन्य सभी इंद्रियों का दमन हो जाता है। स्वादेंद्रिय को वशीभूत किए बिना कोई भी इंद्रियों का स्वामी नहीं बन सकता। विचारशील मनुष्य उपवास द्वारा शीघ्र ही इंद्रियों का दमन कर लेते हैं।'

पिंगला—'प्राचीन काल में विदेह नगरी में एक वेश्या रहती थी। उसका नाम पिंगला था। मैंने उससे भी शिक्षा ली। हे राजन्! एक दिन सुन्दर वस्त्रों से सज्जित होकर वह गृह-द्वार पर शाम तक ग्राहकों की प्रतीक्षा में बैठी रही। इस तृष्णा से वह निद्रा रहित होकर दरवाजे पर, कभी भीतर तो कभी बाहर आकर आधी रात तक प्रतीक्षा करती रही। धन की अभिलाषा से आशा-ज्वर से पीड़ित हो उसने निराशा एवं शोक में रात्रि व्यतीत की। उसे अपने लोभ, काम एवं तृष्णामय जीवन से बड़ी विरक्ति हुई।'

'अत्यधिक निराश होकर उसने यह गाना गाया, 'विषयों के प्रति उदासीनता उस खड्ग की भांति है जिससे मनुष्य अपनी कामनाओं के धागों को काट सकता है।' 'मनुष्य तब तक शरीर के बंधन से छूटना नहीं चाहता जब तक उसे निराशा न हो। जिस प्रकार मनुष्य ज्ञान के बिना अहं तथा मम का परित्याग नहीं करता उसी प्रकार निराशा के बिना मनुष्य शरीर के बंधन से नहीं छूटता।' पिंगला ने कहा—'अहा! मन के अनियंत्रित होने से मैं कितनी भ्रमित हूं। कितनी मूर्ख हूं मैं। मनुष्य जैसे क्षुद्र जंतु से मैं काम-तृप्ति की चाह करती हूं।'

भगवान नारायण के सिवा, जो वास्तविक प्रेमी है, जो मुझे तृप्ति दे सकता है, कौन मुझे शाश्वत सुख तथा सम्पत्ति दे सकता है। मैं क्षुद्र मनुष्य को प्रसन्न कर रही हूं, जो मेरी कामनाओं की पूर्ति नहीं कर सकता तथा जिससे दुःख, भय, रोग, शोक तथा मोह की प्राप्ति होती है। मैं सचमुच! ही बड़ी मूर्खा हूं।'

'मैंने व्यर्थ ही इस निंदित व्यवसाय में अपनी आत्मा को पीड़ित किया। मैंने दयनीय मनुष्यों से, जो लोभी तथा स्त्रियों के गुलाम हैं, अपने शरीर को बेच कर धन तथा सुख की कामना की।'

'मेरे सिवा अन्य कौन व्यक्ति इस गृह में वास करेगा जिसमें हड्डियां ही शहतीर, खंभे तथा छत हैं, जो चर्म, केश तथा नखों से ढका हुआ है, जो नव-द्वारों से युक्त है जिनसे मल-मूत्र विसर्जित होते रहते हैं।'

'इस विदेह नगर में, जो ज्ञानियों से भरा हुआ है, मैं ही एक स्त्री हूं जिसने अपने सुख, आशा तथा कामना को शरीर में स्थापित किया है। मैं ही एकमेव मूर्खा हूं, जो मुक्तिदायक ईश्वर को छोड़ विषय-पदार्थों में सुख की कामना करती हूं।'

'वही सच्चा मित्र, रक्षक, प्रभु, परम प्रिय, मालिक तथा सभी भूतों की आत्मा है। उसे मना कर अपने शरीर को उसी पर अर्पित कर मैं लक्ष्मी के समान ही उसी में शाश्वत सुख प्राप्त करूंगी।'

'दूसरों की सेवा से क्या लाभ? देवताओं तथा मनुष्यों में देश, क्षमता तथा अन्य बहुत से बंधन हैं। इंद्रिय-सुख, मनुष्य तथा देवता आदि स्त्रियों को कैसे आनंद दे सकते हैं? सभी का आदि तथा अंत है।'

'निश्चय ही अपने पूर्व-जन्मों में मैंने प्रभु के लिए कुछ व्रतादि किए हैं, क्योंकि उसी की कृपा से यह वैराग्य मेरे मन में उत्पन्न हुआ है जो सारी अपवित्र कामनाओं का उन्मूलक है। उसकी ही कृपा से मैंने शाश्वत शांति तथा सुख के मार्ग को प्राप्त किया है।'

'यदि प्रभु मेरे ऊपर प्रसन्न न होते तो इस प्रकार की निराशा तथा उससे उत्पन्न वैराग्य का उदय न होता, जिससे मैं सारे रागों तथा सुखों को त्यागने में समर्थ बन सकूं।'

'मैं विनम्र भक्ति के साथ ईश्वर की इस देन को सिर पर धारण करती हूं। मैं सारी व्यर्थ इच्छाओं तथा कामनाओं का परित्याग कर परम प्रभु की शरण में जाती हूं। संतुष्ट, ईश्वर में अटूट श्रद्धा रख कर, संयोगवश जो भी मिल जाए उसी से जीवन-निर्वाह करते हुए मैं परमात्मा के नित्य सुख का उपभोग करूंगी। ईश्वर के सिवा जीव को अन्य कौन उबार सकता है, जो विषयांध होकर संसार रूपी गंभीर गड्ढे में गिरा हुआ काल रूपी अजगर का शिकार बन रहा है।'

'जब मनुष्य इस जगत की विनश्वरता का साक्षात्कार करता है, जब इस जगत को काल रूपी अजगर के गाल में देखता है तब वह निश्चय ही इस लोक तथा परलोक के चलायमान, भ्रांतिमय, तत्त्वहीन सुखों से घृणा करेगा। वह सावधान होकर मिथ्या पदार्थों से अलग रहेगा तथा अपनी आत्मा में ही नित्य-सुख का उपभोग करेगा। जब मनुष्य सारे विषय-पदार्थों के प्रति उपेक्षा करता है तब आत्मा ही आत्मा की रक्षा करती है।

ब्राह्मण ने कहा—'इस प्रकार निश्चय कर पिंगला अपने मन को ईश्वर में लगा कर, प्रेमियों के लिए अपनी सारी आशाओं एवं तृष्णाओं का परित्याग कर शांत मन से बिछावन पर जा बैठी है। उसने सारी अपवित्र कामनाओं का परित्याग किया, जिनसे उसको अशांति मिल रही थी। शांत मन से वह गहरी नींद में सो गई।'

'मनुष्य जिसको सबसे अधिक प्रिय मानता है उसको प्राप्त करना ही सारे क्लेशों तथा दुःखों का मूल है। सत्य को जानने वाला सारे पदार्थों का परित्याग कर असीम सुख को प्राप्त करता है।'

काग—'एक कुरर पक्षी की चोंच में मांस का एक टुकड़ा था। उससे बलवान एक पक्षी ने जिसके पास कोई टुकड़ा न था, उस पक्षी को धर दबोचा। परंतु कुरर ने उस मांस के टुकड़े को गिरा दिया। वह स्वतंत्र हो सुखी

बन गया। प्रिय वस्तुओं का परित्याग भला है। इससे शांति मिलती है।'

शिशु—'मैं मानापमान की चिंता नहीं करता। मैं गृह, स्त्री अथवा बच्चे की चिंता नहीं करता। मैं आत्मा में क्रीड़ा करता हूं, आत्मा में रमण करता हूं तथा शिशुवत विचरण करता हूं।'

'दो जन ही दुःखों से विमुक्त तथा सर्वोच्च सुख में निमग्न हैं—शिशु, जो कुछ भी जानता नहीं तथा वह मनुष्य, जिसने परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया है, जो गुणों के प्रभाव से परे चला गया।'

स्त्री—'किसी स्थान में एक लड़की थी। उसके साथ विवाह संबंध के लिए आए हुए लोगों का उसे ही स्वागत करना था, क्योंकि उसके परिवार के लोग अन्यत्र कहीं गए हुए थे। वह एकांत में धान कूट रही थी। ऐसा करते समय उसकी चूड़ियों से बड़ी आवाज होती थी। बुद्धिमान लड़की अपनी निर्धनता पर लज्जित हुई। उसने विचार किया कि आए हुए अतिथि जन को उसकी निर्धनता का पता न चलना चाहिए। उसने एक-एक कर चूड़ियां तोड़ डालीं। केवल दो चूड़ियां हर हाथ में रह गई थीं। परंतु धान कूटते समय इन दो चूड़ियों से भी आवाज होती थी। उसने उनमें से एक को भी तोड़ दिया। बची हुई एक चूड़ी से आवाज न हुईं और वह अपना काम करती रही।'

'सत्य तथा अनुभवों की खोज में भ्रमण करते हुए मैंने उस लड़की के अनुभव से इस उपदेश को ग्रहण किया कि जहां बहुत लोग रहते हैं वहां झगड़ा होगा। दो मनुष्यों के बीच भी विवाद अथवा बातचीत का मौका बनेगा। अतः मनुष्य को एकांतवास करना चाहिए। लड़की की एक चूड़ी के समान अकेले ही रहना चाहिए।'

सर्प—'शरीर नश्वर तथा गतिशील है फिर साधु के लिए गृह-निर्माण करना व्यर्थ तथा दुःख की जड़ है। जिस प्रकार सर्प दूसरों के बनाए बिल में प्रवेश करता है और बड़े आराम से समय काटता है उसी प्रकार संन्यासी भी जो वास-स्थान मिल जाए उसी में आराम से रहे। उसके लिए कोई एक ही निश्चित स्थान की आवश्यकता नहीं है।'

मकड़ी—'प्रेम, घृणा अथवा भय के द्वारा जिस वस्तु पर मनुष्य सदा ध्यान बनाए रखता है वह भ्रमर-कीट-न्याय से कालांतर में उसी वस्तु के रूप को प्राप्त कर लेता है। जैसे भृंगी एक कीड़े को ले जाकर अपने बिल में बंद कर लेती है और वह कीड़ा भय से उसी का चिंतन करते-करते उसी शरीर से तद्रूप हो जाता है। इसलिए मनुष्य को अन्य वस्तु का चिंतन न करके केवल परमात्मा का ही चिंतन करना चाहिए।'

'इस प्रकार उपर्युक्त चौबीस गुरुओं से मैंने यह शिक्षाएं ग्रहण की। हे राजन्! सुनिए। मैंने अपने शरीर से भी शिक्षा ली है। यह शरीर भी मेरा गुरु है। यह मुझे विवेक तथा वैराग्य की शिक्षा देता है। मरना और जीना तो इसके साथ लगा रहता है। यद्यपि शरीर से तत्त्व विचार करने में सहायता मिलती है तथापि मैं इसे अपना कभी नहीं समझता।

'इसलिए अनेक जन्मों के बाद यह अत्यंत दुर्लभ मानव-शरीर पाकर बुद्धिमान पुरुष को चाहिए कि शीघ्र से शीघ्र मृत्यु से पूर्व ही मोक्ष-प्राप्ति का प्रयत्न कर ले। इस जीवन का मुख्य उद्देश्य मोक्ष ही है। विषय-भोग तो सभी योनियों में प्राप्त हो सकते हैं, इसलिए इनके संग्रह में यह अमूल्य जीवन नहीं खोना चाहिए।'

'राजन्! शरीर से यह शिक्षा लेकर मुझे जगत से वैराग्य हो गया। मेरे हृदय में ज्ञान-विज्ञान की ज्योति जगमगाती रहती है। न तो कहीं मेरी आसक्ति है और न ही कहीं अहंकार ही।'

भगवान श्रीकृष्ण ने कहा—'प्यारे उद्धव! परम ज्ञानी अवधूत दत्तात्रेय ने राजा यदु को इस प्रकार उपदेश दिया। यदु ने उनकी पूजा और वंदना की, फिर वे उनसे अनुमति लेकर बड़ी प्रसन्नता से इच्छानुसार पधार गए। हमारे पूर्वजों के भी पूर्वज राजा यदु अवधूत की यह बात सुन कर समस्त आसक्तियों से छुटकारा पा गए और समदर्शी हो गए।' □

तेरापंथ शासन का कार्यकारी हस्ताक्षर महासभा

महासभा का इतिहास

लेखक
मुनि सुमेरमलजी (मंत्रीमुनि) लाडनूं

संपादक
मुनि उदित कुमार

गतांक से आगे....

महासभा : एक प्रतिष्ठित संस्था

तेरापंथी सभा को प्रारंभ से समर्पित एवं तपस्वी कार्यकर्ताओं का योग मिला। इससे सभा समाज में जल्दी ही प्रतिष्ठित हो गई। महासभा एक रजिस्टर्ड संस्था है। इसका अपना विधि-विधान है। समय-समय पर विधान में नियमानुसार संशोधन भी होते रहे हैं। प्रारंभ में यह 'सभा' के नाम से कार्य संपादित करती थी। 30 जनवरी 1947 को यह 'महासभा' के नाम से अभिहित हो गई। सभा के रूप में भी यह राष्ट्रीय प्रतिष्ठा प्राप्त थी, बाद में भी वह स्थिति बनी रही।

महासभा संचालन प्रक्रिया

महासभा के प्रारंभ से यही क्रम था कि तेरापंथी परिवार में जन्मा सदस्य साबालिग हो जाने से महासभा का स्वतः सदस्य बन जाता। पूरे समाज में से अलग-अलग क्षेत्रों के प्रतिनिधित्व के क्रम से आनुपातिक सदस्य ले लिए जाते। पहली विधिवत् कमेटी प्रथम अधिवेशन 24 मई 1914 के दिन बनी। इस कमेटी में 77 सदस्य चुने गए। कई वर्षों तक सदस्यों का चयन करीब इतनी ही संख्या में चलता रहा। बाद में विधान में 201 सदस्यों का क्रम रहा। उसके भी कई वर्षों बाद 501 सदस्य लिए जाने लगे। इनको लेने की पूरी प्रक्रिया, रीति, परंपरा व विधान था। ऐसी कमेटी को 'कार्यकारिणी सभा' (सेन्ट्रल काउन्सिल), कहीं-कहीं इसे केन्द्रीय कार्यकारिणी सभा भी लिखा है। इसका एक निश्चित कोरम रहता था। कोरम की संख्या में परिवर्तन होता रहता। एकदम प्रारंभ में तेरह में सात सदस्यों का कोरम रखा गया, कोरम के अभाव में मीटिंग या तो अगले दिन या कुछ दिन आगे के लिए स्थगित कर दी जाती या फिर आधा घंटे स्थगित रखकर आगे मीटिंग कर ली जाती।

सेंट्रल काउन्सिल में पूरे देश के सभी प्रांतों के घरों के अनुपात से सदस्यों को लेने का क्रम बना हुआ था। आजादी से पूर्व अखंड भारत के उस जमाने के प्रांत व क्षेत्रों से लोग लिए जाते। उस क्रम से वर्तमान पाकिस्तान के कराची, लाहौर, बहावलपुर आदि तथा वर्तमान बांग्लादेश के रंगपुर, सिराजगंज, जेसोर आदि से भी सदस्य लिए जाते थे। नेपाल से भी लिए जाते। कार्यकारिणी की मीटिंगें अकसर कलकत्ता में रहती और उनमें कोरम की समस्या रहती। अधिक सदस्य होने से निर्णय लेने में भी कठिनाई रहती।

इस तरह की कठिनाई व समस्या से निबटने के लिए 'कार्यकारिणी' की एक थोड़े सदस्यों की 'कार्यसमिति' (वर्किंग कमेटी) सर्वप्रथम 28 जनवरी 1940 को बनाई गई। इसमें प्रारंभ में 21 सदस्य लिए गए। अध्यक्ष व मंत्री पदेन रहते थे। बाकी सदस्यों का चुनाव कार्यकारिणी करती थी। कार्यकारिणी का चुनाव जनरल मीटिंग (साधारण सभा का अधिवेशन) में होता था। कार्यसमिति के 21 सदस्यों में कोरम 5 का रहता था। सन् 1946 से कार्यसमिति के सदस्यों की संख्या 21 से 31 कर दी गई। कोरम 5 का ही रहा। कुछ वर्षों के बाद संख्या 41 कर दी गई। प्रारंभ से बहुत लंबे समय तक कार्यकारिणी व कार्यसमिति

की बैठकों को 'अधिवेशन' कहते थे। सत्तर के दशक से अधिवेशन की जगह 'मीटिंग' शब्द प्रयुक्त करने लगे।

सोसाइटीज ऐक्ट में सरकार द्वारा यह परिवर्तन किया गया कि जन्मना कोई व्यक्ति संस्था का सदस्य नहीं बन सकता। सदस्यता फार्म भरने के बाद संस्था का साधारण या आजीवन या अन्य किसी प्रकार का सदस्य होगा। इस नियम के अनुसार महासभा के भी सदस्य बनने लगे। उसके कुछ वर्षों बाद यह चिंतन उभरा कि संस्था संचालन के लिए दो बॉडी क्यों रखी जाए? तब सेंट्रल काउंसिल को सन् 1987 में भंग कर दिया और कार्यसमिति की सदस्य संख्या 41 से बढ़ाकर 100 तक कर दी गई। अभी यही क्रम चल रहा है।

इतिहास आलेखन का आधार

महासभा का इतिहास सन् 1913 से अब तक का गौरवपूर्ण इतिहास है। इस अवधि में महासभा ने भारी उतार-चढ़ाव देखे। निष्ठाशील कार्यकर्ता अपनी निष्ठा से आगे बढ़ते गए। उनके मार्ग में अवरोध/विरोध आते गए, साथ ही गति-प्रगति का क्रम भी अनवरत रहा। इतिहास को समग्रता से संकलित कर पाना बहुत कठिन एवं दुरूह कार्य है। इतिहास वैसे कभी संपूर्ण होता ही नहीं। लेखक के सामने जितनी सामग्री उपलब्ध होती है, उन्हीं को वह संकलित-संपादित करता है और उसका आलेखन करता है।

सामग्री उपलब्ध होने के दो साधन हैं—

1. लिखित, और 2. मौखिक।

लिखित रूप में प्राप्त होने के कई साधन हो जाते हैं—● किसी व्यक्ति-विशेष के संस्मरण/घटनाएं ● वार्षिक विवरण ● मीटिंगों की मिनिट बुक ● पदाधिकारियों का पत्र-व्यवहार ● पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित सामग्री।

मौखिक मुख्यतः पदाधिकारियों तथा संबंधित अन्य व्यक्तियों की स्मृति एवं व्याख्या पर निर्भर करता है। प्रस्तुत इतिहास लेखन में दोनों प्रकार से सामग्री का समावेश किया है।

पदाधिकारियों की पहचान

प्रारंभ में अध्यक्ष को 'सभापति' कहा जाता था। लंबे समय तक यही नाम चला। बाद में 'अध्यक्ष' नाम पड़ा। कार्यवाही में आए दोनों नाम एक ही पद के द्योतक हैं। उपाध्यक्षों की प्रारंभ में 'सहकारी सभापति' फिर 'उपसभापति' तो बाद में उपाध्यक्ष के रूप में पहचान बनीं।

महामंत्री को पहले 'संपादक' और उपमहामंत्री को 'सहकारी संपादक' कहते थे। बाद में क्रमशः 'प्रधानमंत्री' व उपप्रधानमंत्री (सन् 1925 से) नाम से पहचान हुई। दिनांक 16 मार्च 1991 से 'महामंत्री' व 'उपमहामंत्री' या 'उपमंत्री' कहते हैं। 'कोषाध्यक्ष' व 'हिसाब परीक्षक' नाम शुरू से अब तक यही है। संस्था में अध्यक्ष, महामंत्री, व कोषाध्यक्ष एक-एक होते हैं। उपमहामंत्री हमेशा दो रहे। उपाध्यक्ष पहले दो, फिर पांच, फिर सात और अभी पांच लिए जाते हैं।

प्रारंभ के वर्षों में प्रायः प्रत्येक रविवार को मीटिंगें होती। सन् 1940 से प्रतिवर्ष औसतन 10 से 20 तक मीटिंग होती। सन् 1955 के बाद 8 से 13 तक होती। बीच में ऐसी स्थितियां भी आईं कि कई वर्षों तक बिलकुल भी मीटिंग नहीं हुई। इन वर्षों में करीब 3 से 5 मीटिंगें हो जाती हैं जिनमें एक या दो आचार्यश्री के प्रवास स्थान पर हो जाती हैं जिससे पूरे देश के जुड़े कार्यकर्ता आसानी से शरीक हो सकें। बाकी मीटिंगें कलकत्ता में होती हैं।

महासभा की कार्यकारिणी की जो मीटिंगें हुई, इतिहास में उनकी पूरी सूची परिशिष्ट में दी गई है। महासभा की कार्यकारिणी की 2 नवम्बर 1913 से 21 जनवरी 1917 तक की मीटिंगों की मिनिट्स बुक उपलब्ध है। उसके बाद से दिनांक 21/4/38 के बीच की कार्यकारिणी मीटिंगों की मिनिट्स बुक उपलब्ध नहीं हैं। इस अवधि की मिनिट बुक बहुत खोजने पर भी महासभा भवन में कहीं भी उपलब्ध नहीं हो पाई।

दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान कलकत्ता से पुस्तकालय की किताबें, हस्तलिखित प्रतियां, मिनिट बुकें, गजट, पत्राचार आदि सामग्री सुरक्षा की दृष्टि से गंगाशहर भेज दी गई विश्व युद्ध समाप्त होने के बाद पुनः गंगाशहर से कलकत्ता रेल से भेजी। इस बीच कुछ बक्से गुम हो गए। उसमें 368 पुस्तकें, गजट आदि गुम हो गए। ऐसा उल्लेख मिलता है। रेलवे में क्लेम के लिए महासभा ने

कार्रवाई की, पर नहीं मिल सकी। सामग्री मिलान के बाद पुस्तकें/गजट/मिनिट बुकें गायब थी। दिनांक 12/8/38 से मिनिट बुक पुनः प्रारंभ होती है। मध्यवर्ती करीब बीस वर्षों की सामग्री अनुपलब्ध है। इसी कारण मीटिंगों का क्रम दिनांक 21/1/17 के बाद सीधे दिनांक 21/4/38 से प्रारंभ होकर दिनांक 6/3/87 तक की कार्यकारिणी की मीटिंगों की मिनिट बुक उपलब्ध है। कार्यसमिति बनने के बाद पहली मीटिंग दिनांक 25/5/40 को हुई। उसके बाद इसकी मीटिंग निश्चित समयावधि में होती रही हैं। पुस्तक में दिनांक 11/12/2005 तक की मिनिट बुक का वर्णन है। इस प्रलंब अवधि में होने वाली मीटिंगों के विशेष विवरण/प्रसंग ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

चंदे पर चिंतन

नवंबर और दिसंबर 1913 में हुई आठ मीटिंगों में समाज से चंदा लेकर काम करना या अधिकारियों का आपस में ही खर्च वहन करके काम करना, इस पर चिंतन चलता रहा। प्रति सप्ताह होने वाली मीटिंगों में उपस्थिति अच्छी रहती थी। सप्ताह-भर में जो भी कुछ विचारणीय बिंदु होते उन पर चिंतन कर क्रियान्विति का दायित्व मंत्री को या अन्य किसी उपयुक्त व्यक्ति को सौंप दिया करते थे।

लगता है चंदे से अर्थ इकट्ठा करने में लोग बहुत सकुचाते थे। ऐसा करने में उन्हें कई खतरे नजर आते थे। अर्थ-प्राप्ति को विकेंद्रित करने पर समाज का हर व्यक्ति अर्थ के बारे में पूछ सकता है। होने वाले खर्चे पर टीका-टिप्पणी कर सकता है। समाज का नेतृ-वर्ग निजी तौर पर खर्च करने का आदी था। उन्हें इन बातों को लेकर किसी प्रकार का ऊहापोह होना अनुचित लगता था, इसलिए चंदे के मामले में उन्होंने बहुत सोचा। चंदा लिखाने का तय हुआ फिर भी लेने से पूर्व साधारण सभा बुलाकर राय लेना जरूरी समझा गया। इससे लगता है कि पदाधिकारियों के मन में चंदा लिखाने पर लोगों की क्या प्रतिक्रिया होगी, उसे जानने की उत्सुकता रही होगी या कितना चंदा लोग लिखाते हैं, उसे देखकर ही इकट्ठा करने का चिंतन रहा होगा।

चंदे के लिए सात सदस्यों की एक समिति गठित की गई और यह तय किया गया कि वे चंदा लिखवाएं। साथ ही यह निश्चय हुआ कि जब तक सभा की नियमावली न बन जाए तब तक लिखित चंदे को न लिया जाए। कोई खर्च हो वह एक बार श्रीचंद गणेशदास के यहां से लिया जाए। बाद में सभा चंदा करके उसकी संपूर्ति करेगी।

प्रथम वैतनिक कर्मचारी की नियुक्ति

● काम काफी करना होता था, इस हेतु दिनांक 7/6/2014 को एक लिखा-पढ़ी करने वाले वैतनिक व्यक्ति को रखने का निर्णय लिया गया। वह व्यक्ति था—हरिदास बंद्योपाध्याय (बनर्जी)। महासभा के इतिहास में यह कार्यालय का काम करने वाला पहला वेतनभोगी व्यक्ति था। उसका मासिक वेतन 25 रुपए था। उस समय यह वेतन अच्छा माना जाता था। हरिबाबू अंग्रेजी पढ़े-लिखे व्यक्ति थे, इसलिए इतने वेतन पर रखे गये। वरना कम वेतन पर समाज के व्यक्ति मिल सकते थे। उस समय अंग्रेजी में पढ़ा-लिखा होना जरूरी समझा गया। इलाहाबाद, जोधपुर आदि के जो पत्र आते थे, वे अंग्रेजी में आते थे, उनका जवाब भी अंग्रेजी में देना होता था। महामंत्री केशरीचंदजी स्वयं अंग्रेजी में बोलते भी थे, लिखते भी थे, किंतु इतना समय नहीं निकाल पाते थे कि वे बता देते। हरिबाबू अंग्रेजी या हिन्दी में जैसा भी लिखना होता, लिख देते। वे उसे भेज देते।

● सभा की नियमावली बनाने का भार दिनांक 5/7/1914 को वृद्धिचंदजी गोठी आदि सात व्यक्तियों को सौंपा गया था। उन्होंने तत्परता से विधान बनाया। मीटिंग में उस पर काफी विचार-विमर्श चला। अन्त में तय हुआ—इस हेतु साधारण सभा आयोजित की जाए, सब सदस्यों की राय से इसे पास किया जाए।

● सभा के विधान को अंतिम रूप से पास दिनांक 2/8/2014 को किया गया तथा इसे छापने का निर्णय लिया गया।

ट्रस्टियों का निर्वाचन

● दिनांक 16/8/2014 से चंदा लिखा जाने लगा, उदारता से लोग चंदा लिखाने लगे। कार्यकर्ताओं का चिंतन रहा—अर्थ प्रयोग में पारदर्शिता कैसे रखी जाए? इस हेतु गहरा विचार-विनिमय हुआ। विधान में ट्रस्टियों के चुनाव का प्रावधान था। उसका उपयोग करते हुए

सात ट्रस्टी नियुक्त किए गए। 1. चैनरूप संपतरामजी (सरदारशहर), 2. तेजपाल वृद्धिचंदजी (चूरू), 3. श्रीचंदजी गणेशदासजी (सरदारशहर), 4. बींजराज हुकमचंदजी, 5. जेसराज जैचंदलालजी (राजलदेसर), 6. रतनचंदजी शोभाचंदजी, 7. हजारीमल मुलतानमलजी।

सातों कलकत्ता की प्रतिष्ठित फर्म थे। समाज का सातों में विश्वास था। विश्वस्त तो और भी अनेक थे, किंतु पहले ट्रस्टी बनने का अवसर इन सात फर्म के मालिकों को मिला।

विद्यालय खोलने पर विचार

● दिनांक 30/4/2016 की मीटिंग में विद्यालय खोलने की तिथि तय करने का दायित्व श्रीगणेशदासजी गधैया को सौंपा गया। अध्यापकों की नियुक्ति का दायित्व श्री रायचंदजी सुराणा आदि पांच सदस्यों को सौंपा गया।

सदस्यों की राय से एक विद्यालय कमेटी बना दी गई। कमेटी विशेष रूप से शिक्षा संबंधी दायित्व निभाएगी, ऐसा निर्णय लिया गया।

विद्यालय कमेटी की मीटिंग प्रति गुरुवार

● दिनांक 9/7/16 की मीटिंग में विद्यालय की प्रगति पर सभी ने संतोष व्यक्त किया। विद्यालय के खर्च का प्रबंध भी समुचित करने की सबकी राय रही। प्रति वृहस्पतिवार को विद्यालय कमेटी की मीटिंग होनी शुरू हो गई। सभा की मीटिंग में भी विद्यालय को सक्षम बनाने हेतु चर्चा चलती रहती थी।

लगता है उस समय के जो सदस्य विशेष सक्रिय होना चाहते थे, उनके लिए विद्यालय योजना वरदान साबित हुई।

सन् 1940 : वर्किंग कमेटी का प्रस्ताव पास

● दिनांक 14/1/1940 की इस मीटिंग में यह प्रस्ताव आया—कार्यकारिणी सभा (सेंट्रल काउन्सिल) तो बहुत बड़ी है। पिछले अनुभवों से सबको यह ज्ञात था कि सभा के प्रति निष्ठा रखने वाले होने पर भी मीटिंग में नहीं आ पाते। कई महानुभाव तो पूरे वर्ष में एक-दो बार ही आ पाते हैं, इसलिए एक कार्यसमिति (वर्किंग कमेटी) बनाई जाए, उसमें सक्रिय सदस्यों को लिया जाए। उनकी संख्या 21 से अधिक न हो, मीटिंग का कोरम पांच सदस्यों का रखा जाए। काफी समालोचना के बाद सर्वसम्मति से इस प्रस्ताव को पास किया गया।

वर्किंग कमेटी का गठन

● दिनांक 24/1/2040 को वर्किंग कमेटी का पहली बार गठन हुआ। 21 सदस्य नियुक्त हुए। सभा की यह पहली कार्यसमिति थी, जिसके सदस्य थे— 1. ईसरचंदजी चौपड़ा, 2. चांदमलजी बांठिया, 3. मोहनलालजी कठोतिया, 4. श्रीचंद गणेशदासजी गधैया 5. छोगमलजी चौपड़ा, 6. श्रीचंदजी रामपुरिया, 7. मोतीलालजी नाहटा, 8. मोहनलालजी बैंगाणी, 9. वृद्धिचंदजी गोठी, 10. सागरमलजी बोथरा, 11. माणकचंदजी सेठिया, 12. छोगमल रावतमलजी 13. हरखचंद पूरणमलजी, 14. मन्नालालजी हणूतमलजी, 15. कुंभकरणजी नथमलजी, 16. सूरजमलजी गोठी 17. गुलाबचंदजी धनराजजी, 18. बनेचंदजी शोभाचंदजी 19. जेसराजजी जैचंदलालजी, 20. सोहनलालजी सुराणा, 21. छगनमल तोलारामजी।

कलकत्ता से बाहर दूसरी सभा का गठन

दिनांक 24/11/1940 की मीटिंग में जोधपुर का एक पत्र सुनाया, जिसमें लिखा था कि वे लोग जोधपुर में सभा की स्थापना करना चाहते हैं। सदस्यों की राय रही—स्थानीय स्तर पर अवश्य सभा की स्थापना की जाए। कलकत्ता सभा की शाखा के रूप में मान्यता उनका पत्र आने के बाद दे दी जाएगी। कलकत्ता से बाहर यह दूसरी सभा होगी। पहली सभा सरदारशहर में बनी, जो कलकत्ता सभा की स्थापना के दो वर्ष बाद बनी थी। उसके 25 वर्ष बाद जोधपुर में सभा बनी। ❑

क्रमशः...

बिनोदकुमार चोरड़िया, जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, 3, पोर्चुगीज चर्च स्ट्रीट, कोलकाता-1
के लिए जैन भारती कार्यालय, गंगाशहर, बीकानेर (राज.) से प्रकाशित एवं प्रेषित और सांखला प्रिंटर्स, बीकानेर द्वारा मुद्रित।

In Memory of

Late Sh. Sohan Lal Kataria

Wife Smt. Sunderbai

Son Manubhai, Praveenkumar, Janak, Yogesh

Vimal, Vikash, Vinay, Vishal, Gouraw, Chirag

Manav, Yash Kataria

Banglore, Mysore, Bemali (Raj.)

MD : VIMAL KATARIA (JAIN)
MD : MADHU KATARIA (JAIN)

VAISHNODEVI LUSH GREENS PRIVATE LIMITED

No. 13, Muthachari Industrial Estate, Nayandhalli
Mysore Road, Bangalore 560 039
e-mail : info@vaishnodeviproperty.com
Phone : 080-23146429, Mobile : 96207 99999

ACHARYA SRI KAILASSAGARSURI GYANMANDIR
SRI MAHAVIR JAIN ARADHANA KENDRA
Koba, Gandhinagar-382 009
Phone : (079) 23276252, 23276204-0

जैन भारती, अगस्त, 2013 ■ प्रेषण दिनांक 28 जुलाई, 2013
भारत सरकार पं. सं. : 2643/57 ■ डाक पंजीयन संख्या : बीकानेर/048/2012-2014

शासनसेवी बुद्धमल दुगड़
सुरेन्द्रकुमार, तुलसीकुमार, कमलकुमार दुगड़
(कल्याण मित्र दुगड़ परिवार)

के.बी.डी. फाउण्डेशन
बुद्धमल सुरेन्द्र दुगड़ फाउण्डेशन
बुद्धमल तुलसी दुगड़ फाउण्डेशन
बीएमडी कमल दुगड़ फाउण्डेशन

201/504, वैष्णो चेंबर, 6, बेब्रॉर्न रोड, कोलकाता 700001
फोन : 22254103/4889

प्रेषक : जैन श्वेताम्बर तेरापंथी महासभा, तेरापंथ भवन, महावीर चौक, गंगाशहर, बीकानेर 334401 • फोन : 0151-2270779
नोट : आपके पते में कोई कमी, अशुद्धि या पिन-कोड नहीं हो तो कृपया सूचित करें। ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।